पसे मर्ग न समझ में आयेंगे ये कौन हमदम थे;
समर ओ गुल खिज़ाँ में गरमियों में आबे ज़मज़म थे!

—निराला

'मैं अब वृद्ध तथा कमजोर हो गया हूँ। सभी प्रकार की मानव व्याधियों ने मुझे घेर लिया है। किन्तु आप लोगों को मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता न करनी चाहिये। यदि आप लोगों को मेरी सेवाओं के प्रति कुछ भी प्रेम और सम्मान हो, तो मेरी प्रार्थना है कि राष्ट्रभाषा की पताका को ऊँची करें। हिन्दी की सेवा का व्रत लीजिये और ...र्य साहित्योत्पादन में सहायता दीजिये। संस्कृत तथा अन्य ...ाषाओं का अध्ययन करिये और उनका सम्मान करिये। इससे मुझे ...ान्ति और सुख मिलेगा।'

—निराला

त्रिवेणी पुस्तक-माला—४

महाकवि निराला

संस्मरण : श्रद्धांजलियाँ

प्रस्तुतकर्ता-
राजकुमार शर्मा

किताब महल

इलाहाबाद ● दिल्ली ● बम्बई

१९५७

त्रिवेणी-पुस्तकमाला; संयोजिका : शकुन्तला मिश्र
सम्पादक : राज कुमार शर्मा
पुस्तक सख्या—४ : संस्मरण-पुस्तक—१

●

मूल्य : तीन रुपये

●

मुद्रक : श्री विष्णु प्रिन्टिग वर्क्स, इलाहाबाद
प्रकाशक : शकुन्तला मिश्र,
८० मी, मधवापुर, इलाहाबाद

उस दिन की पुण्य स्मृति में—

परम पूज्य—

आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र और कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' को; जब मेरी आवारगी, लापरवाही और फक्कड़पन से तंग आकर उन्होंने सोच लिया था—'लड़का हाथ से निकल गया !'

डॉ० रामकुमार वर्मा को; जब 'त्रिवेणी' के प्रधान-सम्पादक के स्थान पर मेरे नाम की मुहर लगवाकर, खेल के मैदान से, उन्होंने जबरन मुझे साहित्य के अखाड़े में ला खड़ा किया;

महादेवी वर्मा को; जब केन्द्रीय सरकार के आमन्त्रण पर नर भक्षकों के देश (नागा-हिल्स) से हिन्दी-प्रचार के कार्य से लौटते ही, उन्होंने अपने साथ 'साहित्यकार' का कार्य करने के लिए मुझे चुन लिया;

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी और श्रीमती इन्दुप्रभा चतुर्वेदी को; जब अपने बच्चे की तरह प्यार-दुलार कर उन्होंने मुझे अपने-बेगाने का फ़र्क़ भुला दिया; तथा

अपने उस साथी को; जिसमें मेरे किसी भी समर्पण को स्वीकार करने की शक्ति नहीं; जब उससे जरा यूँ ही मज़ाक मज़ाक में हुआ परिचय अनजाने-अनचाहे घनिष्ट आत्मीयता में परिवर्तित हो गया।

निवेदन

●

पूछे या बिना पूछे जिन कवियों और लेखकों की रचनाओं का इस पुस्तक में उपयोग कर लिया गया है और अपने अग्रज श्री जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र का, जिन्होंने महाकवि सम्बन्धी अपने संस्मरणों को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की, मैं हृदय से आभारी हूँ।

निरन्तर संघर्ष करते हुए पुस्तक-प्रकाशन-कार्य को आगे बढ़ाये जाने की प्रबल प्रेरणा सर्वश्री दुष्यन्त कुमार, डॉ० धर्मवीर भारती, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, शरदकुमार मिश्र 'शरद', डॉ० ब्रजमोहन गुप्त, ओंकार शरद, विजयकुमार शर्मा एम० ए०, 'तन्मय' बुखारिया, सावित्री शर्मा एम० ए० तथा कुमारी कृष्णा कौशिक से प्राप्त होती रही है। मुझे विश्वास है कि भविष्य में भी निरन्तर उनका शुभाशीर्वाद और सहयोग मुझे आगे बढ़कर कार्य करने की प्रेरणा और बल प्रदान करता रहेगा।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने, सजाने-सँवारने और प्रकाशित करने में सर्वश्री कपूरचन्द्र जैन, 'सृजन' के सम्पादक बद्रीनाथ तिवारी, शिव कुमार, नरेन्द्र कुमार मित्तल, रमेश वर्मा तथा उमेश वर्मा जी ने मुझे जो सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए उन्हें सादर धन्यवाद है।

भाई जयकुमार 'जलज', श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा, बहिन शकुन्तला मिश्र और अपने एक ऐसे साथी; जिसमें खुलकर मेरा साथ देने की ताक़त नहीं; के प्रति आभार प्रकट करने की धृष्टता करने का साहस मुझमें नहीं है; क्योंकि एक प्रकार से मैं जो कुछ भी हूँ वह उनके साथ रहकर; उनका कृपा-पात्र बनकर। उनसे पृथक होकर (बिना उनका सहज स्नेह और सक्रिय सहयोग प्राप्त किए) कोई भी कार्य कर पाना मेरे लिए कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव है।

—राज कुमार शर्मा

अनुक्रम

●

संस्मरण...१५

संस्मरण—

क मानव निराला	......	१७
ख साहित्यकार निराला	......	४१
ग हाज़िर जवाब निराला	......	६५

लेख—

निराला अभिनन्दन समारोह की झाँकियाँ	......	६८
निराला-मिशन और प्रधान-मन्त्री नेहरू	......	७८

श्रद्धाञ्जलियाँ...८५

पद्य—

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पन्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० धर्मवीर भारती, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन', जय कुमार 'जलज', उषा चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ० जगदीश गुप्त, 'तन्मय' बुखारिया, शिव कुमार, शान्तिस्वरूप 'कुसुम', सुधाकर पाण्डेय, जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र, कैलाश 'कल्पित', ओमप्रकाश सिंह, केशवचन्द्र वर्मा तथा पद्मानन्द चतुर्वेदी ८७

गद्य—

महापंडित राहुल सांकृत्यायन, महादेवी, आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चारान्निकोव, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० रामविलास शर्मा, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, डॉ० ब्रजमोहन गुप्त, रामनाथ 'सुमन', सेठ गोविन्ददास, शंकरदयालु श्रीवास्तव, शरदकुमार मिश्र 'शरद', विजयकुमार शर्मा एम० ए०, रत्नाकर पाण्डेय, रमेश वर्मा, गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, ज्ञानरंजन, आचार्य क्षितिमोहन सेन तथा ओंकार शरद ...१२७

परिशिष्ट [क]...१४१

भारती-वन्दना, जुही की कली, बादल राग, भिक्षुक, छत्रपति शिवाजी का पत्र, भर देते हो, राम की शक्ति-पूजा, दे मैं करूँ वरण, सरोज स्मृति, तुलसीदास, तुम और मैं, भगवान बुद्ध के प्रति, युगावतार-परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति, न आये वीर जवाहरलाल, चर्खा चला, ग़ज़ल, विधवा तथा अर्चना आदि निराला जी की अट्ठारह श्रेष्ठतम कविताएँ......१४३

परिशिष्ट [ख]...१६७

निराला का काव्य-साहित्य;
एक परिचयात्मक आलोचना १६६

महाकवि निराला

संस्मरण : श्रद्धाञ्जलियाँ

कवि निराला

परिचय

●

जन्म—महिषादल मेदिनीपुर।

जन्मतिथि—माघ शुक्ल ११ संवत् १९५५।

पिता—श्री रामसहाय त्रिपाठी; महिषादल राज्य के कर्मचारी।

शिक्षा—मैट्रिक; भारतीय दर्शन और संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी का विशेष अध्ययन।

काव्य—प्रथम काव्य-रचना १७ वर्ष की आयु में; प्रथम काव्य-पुस्तक 'अनामिका' सन् १९२३ में।

सम्पादन—'समन्वय' और 'मतवाला'।

आजकल—निवास; कला-मन्दिर, दारागंज, इलाहाबाद। अस्वस्थ; और उनकी अस्वस्थता से हिन्दी-जगत अत्यन्त चिन्तित।

काव्य

●

अनामिका [१९२३], परिमल [१९३०], गीतिका [१९३६], अनामिका (दूसरी) [१९३७], तुलसीदास [१९३९], कुकुरमुत्ता [१९४२], अणिमा [१९४३], नये पत्ते [१९४६], बेला [१९४६], अपरा [१९४८], अर्चना [१९५०], आराधना [१९५३] और गीत-गुंज [१९५३-५६]।
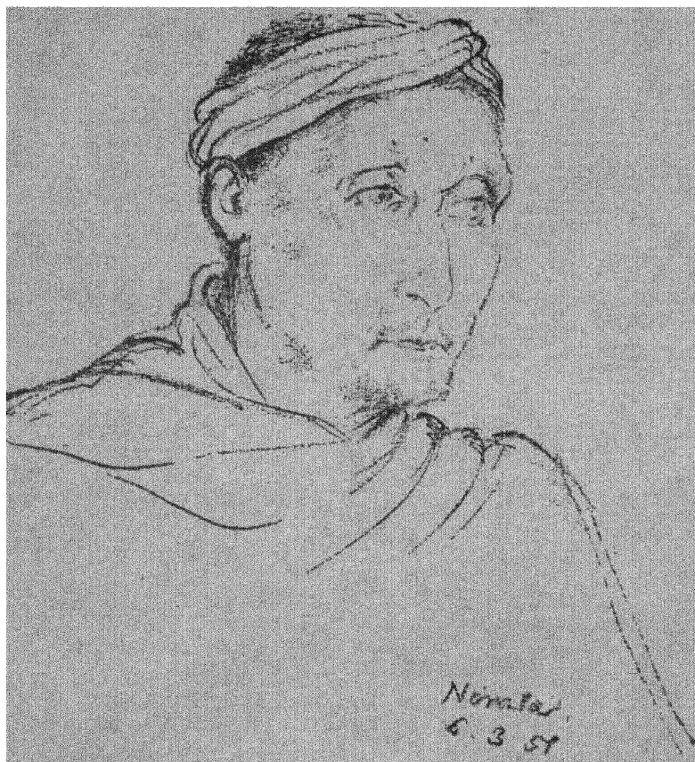
तुम हिमगिरि से व्यक्तित्व धरा के ऊपर,
गीतों की गंगा कभी न रुकने पाती;
तुम आग लिए सूरज की अपने उर में,
जीवन की गर्मी कभी न चुकने पाती;
सब कुछ है, लेकिन एक प्रश्न बचता है—
'तुमने बदले में आखिर क्या-क्या पाया ?'
लोगों के उत्तर कुछ हों, मेरा उत्तर—
'जल को क्या देगी शुष्क अधर की माया !'

— उषा चतुर्वेदी

संस्मरण

संस्मरण : लेख

निराला जी के सहयोगी साहित्यकारों; विशेषतः उनके प्रिय शिष्यों—जयगोपाल मिश्र, डॉ० शिव गोपाल मिश्र और राजकुमार शर्मा द्वारा संग्रहित महामानव महाकवि निराला के जीवन के साठ मर्मस्पर्शी संस्मरण तथा दो संस्मरणात्मक लेख—'निराला अभिनन्दन समारोह की झाँकिया' और 'निराला-मिशन और प्रधान-मन्त्री नेहरू' जिनको लिखकर इस रूप में प्रस्तुत किया राज कुमार शर्मा ने।

क

२३ मई १९५४ की बात है जब मैं सहारनपुर में भाई विजयकुमार शर्मा एम० ए० को छोड़ने बस स्टैंड तक गया, तो देहरादून की पाँच बजे वाली बस के सब टिकट साढ़े चार बजे ही समाप्त हो चुके थे। स्पेशल के जाने की आशा नहीं थी, क्योंकि अपर क्लास के किराए की पाबन्दी ने बहुत से साथी यात्रियों की उतावली ठंडी कर दी थी और कुछ बने-ठने सफेदपोश बाबू साहब—'चलो यार! साली छः वाली से ही चले चलेंगे।' कहते हुए टाइम काटने के लिए, पान चबाने और सिगरेट फूँकने चल दिए थे।

भाई विजय जी ने कहा—'अगली गाड़ी में बहुत देर है, चलो, 'प्रभाकर' जी से ही मिल लें?'

प्रभाकर जी रिश्ते में हमारे बाबा लगते हैं, पर पिताजी से छोटी उम्र के होने के कारण हम उन्हें चाचा जी कहते हैं। 'नया जीवन' और 'ज्ञानोदय' के यशस्वी सम्पादक; बातचीत में पटु; जीवनोपयोगी छोटी कहानियाँ लिखने वाले हिन्दी में अकेले!

कमरे में घुसते ही देखा—मोटी खद्दर का बढ़िया सफेद कुर्त्ता पहिने, आँखों पर मोटी कमानी का कीमती चश्मा लगाए, ऑफिस टेबुल पर अधझुके चाचा जी किसी चीज़ को पढ़ रहे थे। बाद में पता चला कि यह श्रद्धेय माखनलाल जी चतुर्वेदी की रचना है।

सामने की कुर्सी पर, साँवले चेहरे पर नीला चश्मा लगाए, हाथ में हाथ बाँधे बैठे थे, नई पीढ़ी के तरुण गीतकार कवि शान्तिस्वरूप 'कुसुम'।

चाचा जी ने बड़े स्नेह से पास बैठाते हुए पूछा—'कहो, क्या रंग चल रहे हैं ?' हमने कहा—'सब आप की कृपा है !' फिर बातचीत की रंगीनी, मजेदार चुटकुलों और हँसी की खिलखिलाहट से 'विकास लिमिटेड' का छोटा सा ऑफिस गूँज उठा। विजय जी की निगाह सामने रखी हुई अलार्म घड़ी पर गई। दोनों सूईयाँ पाँच पर थीं। अतः चलने के इरादे से उन्होंने मेरी ओर देखा। उठते-उठते मैंने प्रभाकर जी से कहा—'चाचा जी! मैंने निराला जी पर एक लेख लिखा है। ज़रा उसे देख...'

निराला का नाम सुनकर, बीच ही में बात काटकर, वें झल्लाकर बोले—'उस गरीब को इज्ज़त से मर जाने दो। जिसे देखो वही निराला, महादेवी और पंत पर लिख रहा है, क्योकि उन पर पढ़ने को बहुत मिल जाता है। पढ़कर, उसे 'क्रेम' कर, कुछ हेर-फेर कर, हर आदमी वही पुरानी बात दोहराता है। वह यह नहीं समझता, कि बार-बार उनके बड़प्पन की दुहाई देकर वह उनकी इज्ज़त में लगे चार चाँद नोच रहा है।'

मैंने कहा—'निराला जी के स्वास्थ्य पर चल रहे विवाद के दिनों में मैं निराला जी से मिलने गया। उनके साथ हुई उस समय की बातचीत को ही मैंने लेखबद्ध कर दिया है।'

'क्या 'हेडिंग' रखा है ?' उन्होंने रुखाई से पूछा।

'अस्वस्थ निराला से कुछ मुलाकातें।' उनकी आँखों में आँखें गड़ाकर एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए मैंने उत्तर दिया।

'कुसुम' जी अभी तक चुप थे। 'हेडिंग' सुनते ही बोले—'भई, राजू! कल अवश्य दिखा देना।'

हमने चाचा जी के चरण छुए और उनकी भलाई-बुराई करते, तेज़ी से क़दम उठाते हुए, बसस्टैंड की ओर चल दिए। सफेद घण्टाघर की विशाल घड़ी में छः बजने में सिर्फ़ पन्द्रह मिनट बाकी थे।

× × ×

२५ मई को चार बजे, चाचा जी बड़ी तन्मयता से मेरा लेख पढ़ रहे थे। श्री जयकुमार 'जलज' से उनकी 'निराला के प्रति' कविता के सम्बन्ध में कहे गए वाक्यों '...Such poems must be written in praise of God, not in praise of man and I am an ordinary man.' (...इस प्रकार की कविताएँ ईश्वर के लिए लिखा जानी चाहिएँ, मनुष्य के लिए नहीं और मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ।) को पढ़ते-पढ़ते ज़रा गरदन उठाकर उन्होंने कहा—'बहुत अच्छे; लेख तुमने सुन्दर लिखा है, राजू! लेकिन तुम लोग निराला के लिए याचना क्यों करते हो? गरीब और असहाय कहकर महाकवि का अपमान मत करो!'

मैंने देखा, कहते-कहते चाचा जी की आँखों में लाल डोरे चमक आए, भौहें तन गईं, चेहरे की हड्डियाँ सख्त पड़ गईं। महाकवि के अपमान की बात से, दिल में उठे हुए उबाल के ठंडा पड़ जाने पर, वे फिर कहने लगे—'उस महान दानी को तुम गरीब कहते हो जो हजारों रुपये दान देने में नहीं हिचकिचाता; पैसे को जिसने पैसा नहीं समझा, किसी की सहायता से जिसने कभी हाथ नहीं खींचा।'

मैंने महाकवि का अपमान किया है, उमड़-घुमड़कर चाचा जी का यह कथन मेरे दिल को कचोटे डाल रहा था। उनके उपदेश से मैं इस तरह बौखला उठा, कि बिना कुछ कहे-सुने अशिष्टतापूर्वक हाथ जोड़ता हुआ, 'नया जीवन' कार्यालय से बाहर चला आया।

रेलवे रोड पर अपने लेख को तेज़ी से पढ़ता हुआ, मैं धीरे-धीरे घर की ओर जा रहा था। घंटाघर तक पहुँचते-पहुँचते मैंने दो बार सारा लेख पढ़ डाला, लेकिन उसमें कहीं भी गरीब और असहाय बताकर महाकवि का अपमान नहीं किया गया था; उनके लिए सहायता की याचना नहीं की गई थी। यह पढ़कर मेरी आत्मा को शांति मिली, लेकिन कोशिश करने पर भी पूज्य निराला जी के विचार को मैं मन से नहीं हटा सका। सीमेंट की पक्की सड़क पर चलते-चलते, निराला जी के जीवन की कुछ मर्मस्पर्शी घटनाएँ, चलचित्र की भाँति, एक के बाद एक, मेरे मस्तिष्क में घूमने लगीं।

भगवान् करे, तुम्हारा विवाह कविता से ही हो

प्रयाग आने पर मैंने सुना—निराला जी पागल हो गए हैं। मैली सी लँगी बाँधे, कभी लम्बा सा कुर्त्ता पहिने और कभी नगे बदन ही, पेड़ के नीचे, सड़क के किनारे या किसी दूकान के तख्ते पर पड़े रहते हैं। जेब में कागज़-पेन्सिल हुई तो ठीक, नहीं तो कोयले या ढेले से ही, ज़मीन पर कुछ लिखकर, उठकर चल देते हैं। न खाने की चिन्ता, न पहिनने की। न किसी के कहने का डर, न सुनने की परवाह। कविता के पीछे पागल हुए घूमते हैं। एक दिन एक बुज़ुर्ग ने बताया कि महाकवि की धर्मपत्नी ने यह कहते-कहते दम तोड़ दिया था—'भगवान् करे, अगले जन्म में तुम्हारा विवाह कविता से ही हो।'

उन्होंने फिर कहा—'देखो, राजू! दुनिया कितनी बेवकूफ है, कि अपनी साधना में लीन एक तपस्वी को पागल कहती है।' अपने भर्राए गले को खखार कर साफ करते हुए, उन्होंने अपनी बात पूरी की—'और हाँ, दुनिया कहे क्यों ना! दुनियादारी, ममता-मोह के अभेद चक्रव्यूह को तोड़कर ही तो वह मन-मस्त हुआ अपनी कठोर साधना में लीन है, कि अपनी तपस्या में सफल हो सके; अपनी आत्मा का सर्वोत्तम हमें दे सके। काश! हिन्दी में एक भी ऐसा लेखक और होता...!'

कुछ क्षण रुक कर वह बड़बड़ाए—'निराला पागल! दुनिया पागल! तपस्वी साधक महाकवि निराला...!...राजू! यह पागल दुनिया, तो पागल निराला!' वह वृद्ध सज्जन उन्मत्त से विपरीत दिशा में चल दिए। उन्मत्त-विक्षिप्त अवस्था में कुछ-कुछ बड़बड़ाते जाते हुए, महाकवि के पागल भक्त को मैं टकटकी लगाए देख रहा था। देख क्या रहा था, सोच रहा था—संत निराला! तपस्वी निराला? महाकवि निराला? पागल निराला?

मानव निराला

अगस्त सन् '५३ की बात है। एक दिन मैं डाक्टर उदयनारायण तिवारी से मिलने गया। दुपहर का समय था। तिवारी जी नंगे बदन, पालथी मारे, धोती

का एक पल्ला गले में लपेटे, तख्त पर बैठे, एक सज्जन से बात कर रहे थे। बात-चीत निराला जी के विषय में ही चल रही थी। तिवारी जी कह रहे थे—'कमला शंकर एक नया कम्बल और एक जूता पंडित जी के लिए लेते आए। अगले दिन प्रातःकाल पंडित जी दूध लेने गए। सर्दी से ठिठुरते-चिल्लाते अपने बच्चे को छाती से चिपटाए ग्वाली बाल्टी लेकर ग्वालिन बाहर आई। निराला जी का मानव यह सहन न कर सका कि वे कम्बल ओढ़े मजे में खड़े रहें और एक अबोध शिशु सर्दी में ठिठुरता-काँपता टुकुर-टुकुर उनका मुँह ताका करे। उन्होंने अपना कम्बल उतार कर बच्चे को ओढ़ा दिया। बच्चा पहिले डरा, फिर गर्मी पा खुश हो, हाथ पैर हिलाकर खेलने लगा।

नंगे पैर दूध देने जाते हुए ग्वाले को पंडित जी ने जबरदस्ती अपना जूता पहना दिया। खाली बाल्टी लिए पंडित जी लौटने लगे, तो ग्वालिन ने कहा—'पंडित जी! दूध तो लेते जाइये!'

तेजी से आगे बढ़ते हुए, बिना मुँह फेरे, पंडित जी ने जवाब दिया—'मेरी ओर से इस बच्चे को पिला देना, ग्वालिन!' और ग्वालिन की 'पंडित जी! पंडित जी!' की आवाज़ को अनसुना करते, कुछ कुछ गुनगुनाते हुए, तेजी से वे अपने निवास-स्थान तक आ पहुँचे। नंगे पैर, नंगे बदन, पंडित जी को देखकर कमलाशंकर ने सोचा, कि उनसे पूछें—कम्बल क्या हुआ? जूता कहाँ गया? पर हिम्मत न पड़ी।

× × ×

अभी कुछ दिन पूर्व तक देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निराला जी की अस्वस्थता पर लेख प्रकाशित होते रहे हैं। मैंने कारण की खोज की, तो उनके एक शिष्य ने बताया—'भाई साहब! महाकुम्भ के पुण्य-पर्व पर बाहर से आए हुए यात्रियों ने आकर कहा—'पंडित जी! कहीं ठहरने की जगह नहीं, कहां जाएं?' और मानव निराला ने सोचा—'अपार जनसमूह के निराश्रय रहते, मुझे घर में आराम करने का कोई अधिकार नहीं।' तभी निराश-दुखी यात्रियों ने कातर स्वर में फिर पूछा—'पंडित जी! क्या लौट...?'

कुर्त्ता कन्धे पर डालकर, बाहर निकलते हुए, बीच में ही बात काटकर, पंडित जी बोले—'तुम लोग अन्दर जाकर सो रहो।'

रात भर धुँआधार पानी बरसता रहा। महाकवि निराला, नहीं, नहीं, मानव निराला, उस भयंकर आँधी-पानी में खुली सड़क पर, रात भर, बेखबर सोता रहा। फलतः उसे बीमारी ने जकड़ लिया, खून सूखने लगा, नसें सिकुड़ने लगी।

दानी निराला

कुछ याद नहीं, किसने मुझे यह घटना सुनाई थी। किसी बुजुर्ग, निराला जी के शिष्य या अन्य किसी साहित्यिक या पत्रकार मित्र ने। सुनी थी या पढ़ी थी, यह भी मुझे ठीक से याद नहीं, पर यह घटना मुझे खूब याद है।

घटना कुछ इस प्रकार है कि एक दिन निराला जी हजार-बारह सौ रुपया जेब में डाले, ठाठ से एक्के पर बैठे चले आ रहे थे। राह में एक भूखी भिखारिन सड़क के किनारे, पेड़ की छाँह में बैठी भीख माँग रही थी।

ढलती उम्र, चलती सांसे, जलती धरती और यह है कि हाथ पसारे, भीख माँगे जा रही है? इसके कोई है नहीं क्या? यह विचार मन में उठा। विचार उठा कि एक्का रुका और यह जा पहुँचे निराला जी बुढ़िया के पास। जाते ही पूछा—'आज कुछ नहीं मिला क्या?'

'सुबह से आज कुछ नहीं मिला, बेटा!' बुढ़िया ने सहज भाव से उत्तर दिया। उसका जबाब, पंडित जी के लिए बन गया एक सवाल। वे सोचने लगे—'बेटा! मैं इसका बेटा और यह मेरी माँ! निराला की माँ और सड़क पर भीख माँगे...' इसके आगे वे कुछ सोच न सके। उनका दिमाग़ फटा जा रहा था। एक रुपया बुढ़िया के हाथ पर रख कर उन्होंने पूछा—'मैं तेरा बेटा हूँ और तू है मेरी माँ! बोल अब कितने दिन नहीं माँगेगी?'

'दो-तीन दिन बेटा!'

'श्रौर दस दे दूँ तो ?'

'बीस-पचीस दिन !'

'श्रौर सौ दे दूँ तो ?'

'चार-पाँच महीने !'

चिलचिलाती धूप में, पक्की सड़क के किनारे, माँ माँगती रही, बेटा देता रहा, एक्के वाला देखता रहा। माँ के न माँगने की श्रवधि बढ़ती गई, बेटे की जेब हल्की होती गई। श्रपने पल्ले में रुपयों का ढेर देखकर माँ पागल सी चीख उठी—'कभी नहीं! कभी नहीं! श्रब कभी नहीं, बेटा!' निराला जी ने रुपयों की श्राखिरी मुट्ठी माँ की झोली में उँडेल दी, चरण छुए श्रौर एक्के पर श्राकर बैठ गए।

एक्का चल रहा था। एक्का वाला सोच रहा था—'यह श्रादमी पागल है; जरूर पागल है। इसका दिमाग़ खराब हो गया है। तभी तो बिना सोचे-समझे इसने इतने रुपये उस बुढ़िया को दे डाले।'

घोड़े के चाबुक लगाते-लगाते, एक्का चलाते-चलाते, उसने पंडित जी की श्रोर देखा—उनके श्रानन पर रुपयों के जाने के दुःख की कालिमा नहीं, प्रसन्नता की लहर खेल रही थी।

× × ×

यह सुनकर कि पंडित जी के पास से कोई खाली हाथ नहीं लौटता—

मुसीबत का मारा एक गरीब ब्राह्मण पंडित जी के पास गया। हाथ जोड़कर बड़ी दयनीयता से वह बोला—'पंडित जी! लड़की की शादी है। हाथ में पैसा नहीं; कहीं से कुछ मिल सकता नहीं; श्राप की तरफ से ही कुछ किरपा हो जाती, भगवन्!'

पंडित जी ने उसके चेहरे को ग़ौर से देखते हुए पूछा—'कम से कम कितने में काम चल सकता है ?'

'कम से कम ढाई-तीन सौ तो हों, पंडित जी! यहाँ तो जहर खाने को

भी जेब में पैसा नहीं !' कहते-कहते बूढ़े ब्राह्मण की आँखों में आँसू छलछला आए । पंड़ित जी ने ढाई सौ रुपये के लिए पर्चा लिखकर उसे दे दिया। ब्राह्मण भौंचक्का सा कृतज्ञतापूर्वक उनका मुँह ताकने लगा। हाथ जोड़ते हुए निराला जी बोले—'अब आप जा सकते हैं !'

इन पुस्तकों पर माला चढ़ाओ

८ फरवरी १६५४ को, बसंत-पंचमी के दिन महाकवि निराला की उनसठवीं वर्षगाँठ थी। प्रातःकाल ही पंडित जी के तख्त को कमरे के भीतर पहुँचा दिया गया और कमरे में दरी, चादर तथा कालीन आदि बिछा दिए गए। लगभग साढ़े आठ बजे निराला जी अपने बिस्तर पर बैठे थे । कुछ सज्जन बाहर से भी आए हुए थे ।

महाकवि के गले में, माला पहिनाने के लिए, जब डा० उदयनारयण तिवारी ने हाथ उठाए, तो उन्होंने सामने रक्खी हुई अपनी कृतियों की ओर इंगित करते हुए कहा—'मेरे ऊपर नहीं, इन पुस्तकों पर माला चढ़ाओ !'

इसके बाद वे कहते ही गए—'मेरी पुस्तकें क्रमशः मिल्टन, शेक्सपियर तथा इनसाइक्लोपीडिया हैं। मुझे विश्व-साहित्य के अध्ययन का पूरा अवसर मिला है और ये इतने बड़े 'वर्क्स' हैं, कि मनुष्यों की सम्पूर्ण उम्र ही इनके अध्ययन में बीत जायँ।...हमने तो पच्चीस साल तक हिन्दी के क्षेत्र में सेवाएँ की। हम तो 'डलमऊ' के नम्बर एक गुण्डा थे, क्योंकि खूब खाते और मज़ा करते थे। आज आप लोग हमारी उनसठवीं वर्ष गाँठ मना रहे हैं, किन्तु हमारी तो कुण्डली ही छिन्न-भिन्न हो गई। जन्म-तिथि का पता नहीं। आज का दिन तो सरस्वती पूजन का दिन है।'

हमारी बूढ़ी बीवियाँ जाड़ों मरती हैं, उन्हें कपड़े चाहिएँ

एक दिन श्रीमती महादेवी वर्मा के यहाँ चाय पीते हुए निराला जी ने

कहा—'भई ! हमारा कुछ हिसाब-किताब पता नहीं चलता। हमारे भी खर्च होते हैं ? इसीलिये हमने भोजन भी त्याग दिया, क्योंकि भोजन के लिये हम कहाँ-कहाँ माँगते फिरते ? फिर हमारी भी एक धार्मिकता है ? हिन्दी की सेवा में जहाँ एक ओर मज़ा ही मज़ा है, वहाँ दूसरी ओर आफ़त ही आफ़त। हमें ऐसा बेकार कर दिया कि हज़ारों कोशिश करने पर भी हम अपने नातियों को शिक्षित नहीं कर सके। हम गवर्नर या एम० एल० ए० का क्या कर्तव्य समझें ? जिस Intelligentsia (बुद्धिजीवी) के पीछे हमने इतना सहा, उसी की बदौलत हमारी सारी ज़मीन पासियों ने ले ली और शिक्षा का कोई भी प्रबन्ध सरकार ने हमारे नातियों की नहीं किया। हमारी बूढ़ी बीवियाँ जाड़ों मरती हैं, उन्हें कपड़े चाहिएँ ! नौजवानों को काम चाहिए ! किन्तु मिलता नहीं। यह है हिन्दी सेवा—एक ओर इतनी मज़ा तो दूसरी ओर यह ज़हमत ?' और फिर खिलखिला कर हँस पड़े।

जब जवाहरलाल का पता नहीं

अवधी के कवि श्री बसीधर तथा डा० जगदीश गुप्त आए। मैनपुरी कवि-सम्मेलन की बात चली। निराला जी ने पूछा—'गुप्ता ! तुम्हें कितना Pay off (अदा किया) किया ?'

गुप्त जी ने कहा—'सौ रुपये !'

निराला जी कहने लगे—'महादेवी आदि को एक हजार का चेक दे रहे थे, तो हमने मना कर दिया, कि यदि हिन्दी के योग्य अथवा निर्धन व्यक्तियों की सेवा करना चाहते थे, तो प्रबन्ध और अच्छा करते और जब जवाहरलाल का ही कहीं पता नहीं, तो फिर किसी की सहायता क्या ? रुपये क्या ? चेक क्या ?'

मैं क्या हूँ, ऐसे क्या कहूँ

एक बार जीवन-चरित्र लिखने का अनुरोध करने पर निराला जी ने कहा—

'मैंने अपनी कृतियों में अपने जीवन के सत्य को लिख दिया। जाकर मेरी सभी कृतियाँ खरीद कर पढ़ो, स्वयं मालूम हो जायेगा—मैं क्या हूँ! ऐसे क्या कहूँ!'

हठी निराला : सन्त निराला

२४ फरवरी १९५४ को अतिथियों की अपार भीड़ के कारण, पंडित जी को अपना तख्त, कमरे के बाहर, खुले बरामदे में लाना पड़ा। रात भर धुँआधार पानी बरसता रहा और निराला जी भीगते रहे। अतएव उनके टखनों और घुटनों में अत्यधिक सूजन आ गई। दुपहर को जब हम लोग पहुँचे, तो बताया —'जाड़े और बारिश के कारण सूजन आ गई है। कल आकर मालिस कर जाना, अच्छी हो जायेगी। दो रोज़ की बात थी, अतः वैद्य जी के कहने पर भी उनके यहाँ नहीं गया। चन्द्रकान्ता के यहाँ भी भीड़ है। यहीं, बाहर ही काटना है दो दिन।'

यह है महामानव, महाकवि निराला की उदारता—कि आमन्त्रित व्यक्तियों के लिए स्थानाभाव देखकर, वे स्वयं बाहर चले आए। अपने आप कष्ट सहने पर भी वे किसी को कष्ट देना नहीं चाहते। उदारवृत्ति एवं परोपकार की यह है विशाल भावना, जो सन्तों के स्वभाव में ही सहज सुलभ है। निराला जी सन्त हैं और साथ ही हठी भी। उनके सामने चन्द्रकान्ता जी के यहाँ न जाने का प्रस्ताव रक्खा गया, इसीलिए वे अन्य किसी के यहाँ भी नहीं गए। निराला की निराली वृत्ति यही है—सन्तों सी उदारता, बच्चों सी चपलता।

इंसानों की सेवा ही मेरा सब कुछ है

दिनांक ११-१२-५३ को महादेवी वर्मा की अध्यक्षता में होने वाले कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए निराला जी मैनपुरी गए। राज-प्रासाद के तिमंजिले पर उन्हें ठहराया गया। कमरा राजसी ठाठ-बाट से सजा

हुश्रा था। निराला जी के लिए नाश्ता-चाय तथा भोजन समुचित समय से भिजवाए जाते। भोजन के लिए उनसे पहिले ही पूछ लिया जाता था श्रौर राजा साहब भोजन के समय स्वयं उपस्थित रहते थे।

रानी जी स्वयं कवयित्री हैं। श्रतः निराला जी के स्वागत-सत्कार का विशेष ध्यान रक्खा जाता था। बातचीत के सिलसिले में निराला जी ने राजा साहब को बताया कि मैनपुरी में यह उनका तीसरा श्रागमन है श्रौर इसके पूर्व भी वे राजमहल में श्रा चुके हैं।

राजा श्रौर रानी साहिबा ने हाथ जोड़कर पंडित जी से पूछा—'निराला जी! हमारे योग्य कोई श्रौर सेवा?'

निराला जी ने नौकरों की श्रोर इंगित करते हुए उत्तर दिया—'इन नौकरों की उचित देख-भाल रखना। ये भी इन्सान हैं श्रौर इन्सानों की सेवा ही मेरा सब कुछ है।'

हम तो जवाहर लाल की अंग्रेजी जानते हैं

३० दिसम्बर १९५३ को डा० जगदीश गुप्त ने बातचीत के सिलसिले में गुरु जी से मैनपुरी के कवि-सम्मेलन में राज्यपाल मुंशी के साथ हुई बातचीत के विषय में पूछा तो निराला जी ने कहा—'लाट साहब रहे हों या जो कुछ, हम तो समझ नहीं पाए। वह जब श्राया, हम कुछ बोल ही न पाए। मिलना नहीं चाहते थे, किन्तु मिलना ही पड़ा, तो सँभालकर मिले। हमने देखा कि यदि उससे हिन्दी में बोलेंगे तो फारसी बोल जायेंगे श्रौर वह गुजरात का है, समझे कि नहीं समझे। श्रंग्रेजी श्रच्छी जानता है, यही जानकर हमने श्रंग्रेजी में बात की पर हम तो जवाहर लाल की श्रंग्रेजी जानते हैं। हमें तो जवाहर लाल को ढूँढ़ना होगा तो हम किसी पब्लिक प्लेटफार्म पर इंगलिश स्पीच सुनेंगे।'

हम दो बातें नहीं करते

'हम दो बातें नहीं करते।' अपने बारे में बताते हुए पंडित जी ने कहा—'एक तो यह कि जुआ नहीं खेलते, क्योंकि ब्राह्मण को जुआ नहीं खेलना चाहिए। इसलिए हमने अपने जीवन में कभी जुआ नहीं खेला और दूसरे कि सदा सत्य बोलते हैं। झूठ बोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। फिर भी कभी करना ही पड़ता है, क्योंकि उसके बिना कभी-कभी काम नहीं बनता!'

निराला पागल है

उस दिन पंडित जी कुछ 'मूड' में थे। मैंने प्रश्न किया—'पंडित जी! कुछ लोग कहते हैं, आपकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं?'

पहिले पंडित जी ने ज़ोर से अट्टहास किया। दारागंज का वह छोटा सा कमरा उनकी खिलखिलाहट से गूँज उठा। फिर कुछ क्षण गंभीरता से सोचते हुए से बोले—'निराला की मानसिक स्थिति को जो लोग ठीक नहीं कहते-वस्तुतः वे ही पागल हैं। हम तो किसी के लिए कुछ कहते नहीं। सब देख-सुन कर भी चुप रहते हैं। जो कुछ अपने से बनता है, दूसरों के लिए कर देते हैं। हम तो साधु हैं। व्यर्थ के झगड़े-टण्टे खड़े करने से हमें कोई सरोकार नहीं। जो जैसा करता है, भगवान उसको वैसा ही फल देता है। हमारे विरोधी भी एक दिन स्वयं मुँह की खाएँगे और चुप हो जाएँगे। फिर कभी नहीं कहेंगे—निराला पागल है। उसकी मानसिक-स्थिति ठीक नहीं।'

इन प्राणियों का देखने वाला अब कौन है

दिनांक १४-६-५३ को प्रातः निराला जी दारागंज के अस्पताल गए। वहाँ एक दण्डी महाराज को, जो पसली-पीड़ा से ग्रस्त थे और दवा लेने आए थे, देखकर लौट आए। शिवगोपाल, रामकृष्ण तथा केशव को साथ लिवाकर पुनः

अस्पताल जा पहुँचे। परिचय कराते हुए आदेश दिया—'इन दण्डी महाराज की दवा बनवाकर, दवा लेकर, जहाँ जाना है, वहाँ तक भेज आओ। बस यही सेवा तुम्हें करना है।'

आदेशानुसार उन स्वामी जी को रिक्शा से अलोपीबाग पहुँचाकर वे पुनः निराला जी के पास लौट आए। स्वामी जी का आशीर्वाद निराला जी से कहा। पंडित जी कहने लगे—'हम अपने अभिनन्दन के पहिले इन दण्डी महाराज का अभिनन्दन करना चाहते थे। यह पहले पहलवान था। किन्तु इन लोगों का जीवन हरहों से भी बदतर हो गया है; क्योंकि हरहों का प्रबन्ध और देख-रेख तो लोग करते हैं जिससे दूध दें या हल में जुतें, किन्तु इन प्राणियों का देखने वाला अब कौन है। ये तो कुत्ते की मौत मरते हैं।'

हमने भी एक कुम्भ देखा है

कुम्भ में हुई दुर्घनाओं पर विवाद चलने लगा तो निराला जी बोल पड़े—'कुम्भ की Tragedy (दुर्घटना) की जो बात आप लोग करते हैं, यह हमारी समझ में नहीं आती। यदि वे लोग छिपाएँ न, तो कल से रोटी कैसे उपलब्ध हो ? और बिना खाए तो कोई जी नहीं सकता ? इसीलिये सरासर बेइमानी हो रही है। वह गढ्ढा, जिसमें हजारों धराशयी हुए—सुना है, भरा जा रहा है। पर उससे क्या ? भरना तो इनको पेट चाहिए, जहाँ ऐसा चुम्बक लगा है कि जो लोगों को हरदम खींचता है।'

हाँ ! मैं एक राजेन्द्र प्रसाद को जानता हूँ

दिनांक ५-२-५४ को प्रातः दस बजे राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद निराला जी से मिलने आए। उनके साथ उनके पी० ए० तथा श्री गोविन्द मालवीय भी थे। जब हम लोगों ने पूछा तो निराला जी कहने लगे—'तबियत हमारी खराब थी। इसीलिए ज़्यादा देर तक बातचीत न कर सके।'

वैद्यराज शुक्ल जी ने कलकत्ता हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी के कुछ संस्मरण सुनाए, तो निराला जी ने कहा—'हाँ ! मैं एक राजेन्द्रप्रसाद, जो मेरे मित्र हैं, बार एट लॉ हैं, को जानता हूँ; अच्छी तरह पहिचानता हूँ। अभी वह यहाँ आए थे। वे अब मोटे हैं। मुझसे कुछ कम ऊँचे हैं। उस साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के संगीत कार्यक्रम में हमने भाग लिया था और बंगला में एक छोटी सी वक्तृता भी दी थी, किन्तु उस सम्मेलन के सेक्रेटरी डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद थे, यह मुझे ज्ञात नहीं था।'

संतोष की मार बुरी होती है

'हाँ, तो ये लोग हमारा फोटो लेना चाहते हैं?' पंडित जी ने आश्रम में दर्शनार्थ आए हुए विद्यार्थियों की ओर इंगित करके कहा—'ऐसे तो हमारे बहुत से चित्र हैं। फिर क्या आवश्यकता? हमें हजामत भी बनवानी होगी।...हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे साथ लोग क्या हथकण्डे चला रहे हैं? हमारे रुपयों का कोई उत्तर नहीं आया। हम कुछ बोलते नहीं। वे लोग ऐसे ही मर जाएँगे। सन्तोष की मार बुरी होती है।'

धर्म सुख दुख

एक दिन धर्म के विषय में बात करते हुए पंडित जी ने कहा—'हमारा धर्म तो दार्शनिक है। भगवान् भी दर्शन ही हैं। जब किसी Organic (कारबनिक) वस्तु पर blow करोगे (हाथ से मारोगे) तो तुम्हें चोट लगेगी, यदि वह ज़्यादा कठोर एवं दृढ़ है और इसी को दुःख कहा जायेगा; परन्तु प्रश्न यह उठता है कि Inorganic (अकारबनिक) वस्तु जैसे हवा में घूँसा मारो तो क्या होगा?'

फिर कहने लगे—'जेवर एवं वस्त्र इसलिए पहिने जाते हैं कि शरीर में

स्निग्धता सी आ जाय और इसी मनोवृत्ति को सुख कहते हैं और यह है भी परमावश्यक। ... कोई भी अच्छा काम करना धर्म है और उसको करने पर मन को सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। तुम किसी भूखे को भोजन करा दो तो वह भी धर्म होगा और तुम्हारे मन को शान्ति प्रतीत होगी।'

हमारा तो सभी कुछ मिट्टी में है

अपने विषय में बताते हुए पंडित जी ने कहा—'हम तो भारत के कोने-कोने में जाकर नवयुवकों में Enlightment (जागृति) का कार्य करते थे। क्या मिर्जापुर, बनारस, कलकत्ता, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली, देहरादून, दार्जिलिंग—सभी जगह गए और लोगों को हिन्दी सिखाते रहे, किन्तु अब सब क्या है ? हमारा तो सभी कुछ मिट्टी मे है—काम भी और नाम भी ?'

मतवाला न होता, तो निराला न होता

केन्द्रीय सरकार के आमन्त्रण पर हिन्दी प्रचार करने के लिए साढ़े चार महीने तक मुझे 'नागा-हिल्स' में घूमना पड़ा। उसी सिलसिले में ट्यूनसाँग फ्रन्टीयर डिवीज़न के हेडक्वार्टर ट्युनसाँग में कार्य करते समय मिर्जापुर निवासी श्री त्रिवेणीप्रसाद पाण्डेय एम० ए० एल-एल० बी० से मेरी मित्रता हो गई। पाण्डेय जी के पूज्य पिताजी स्वार्गीय महादेवप्रसाद सेठ के मित्रों में से हैं। अतः बातचीत के सिलसिले में पाण्डेय जी ने 'मतवाला' की कुछ पुरानी प्रतियाँ मुझे दीं और बताया कि निराला जी एक लम्बे अरसे तक मिर्जापुर में रह चुके हैं। कुछ वर्षों तक 'मतवाला' का सम्पादन, प्रकाशन एवं संचालन, सभी कार्य मिर्जापुर से किये जाते थे।

'नागा-हिल्स' से वापिस प्रयाग आते ही, 'मतवाला' की वें पुरानी प्रतियाँ लिए हुए, पंडित जी के दर्शनार्थ, मैं दारागंज गया। चरण स्पर्श कर, तख्त पर बैठे-बैठे 'मतवाला' की पुरानी फाइलें पलटने लगा।

जैसे ही पंडित जी का ध्यान गया, उन्होने मेरे हाथो से फाइल ले ली। फिर उसके अलग-अलग कालम तथा उसमें दी हुई सामग्री को ज़ोर-ज़ोर से गुनगुनाकर पढ़ने लगे। पर कुछ क्षण बाद ही मैंने देखा—निराला जी पढ़ नहीं रहे थे, गुनगुना नहीं रहे थे, एकदम चुप थे और आँखें फाड़े 'मतवाला' के मुख पृष्ठ तथा उस पर छपे हुए सम्पादक के नाम को देख रहे थे। मैंने ज़रा गौर से देखा—अब तक उनकी आँखों की कोर में दो बड़े-बड़े आँसू छलछला आए थे।

कुछ देर तक वातावरण गंभीर बना रहा। एक अजीब सा बोझिलपन मेरे मन और मस्तिष्क पर छाता जा रहा था। बात का रुख पलटने के लिए मैंने निराला जी से प्रश्न किया—'पंडित जी! सुना है महादेवप्रसाद सेठ अच्छे आदमी थे?'

'अच्छे आदमी थे?' निराला जी ने मेरे वाक्य के अन्तिम अंश को दोहरा दिया। फिर कहने लगे—'अच्छे ही नहीं, बड़े अच्छे आदमी थे—आचार, विचार और व्यवहार सभी में। उनमें काम करने का चाव था। आगे बढ़ने की धुन थी और 'मतवाला' तो सचमुच 'मतवाला' था, अपने साथ-साथ एक जमघट को बढ़ा ले जाने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। लिखने में तो जैसे उन्हें कमाल हासिल था। 'मतवाला' के हर लेख में, हर लाइन में 'मतवाला' का मतवालापन बोलता था। इसीलिए तो लोग बेकरारी से 'मतवाला' का इंतजार किया करते थे। हर पढ़ने वाले का दिल चाहता था कि जाकर सम्पादक की पीठ ठोंक आए! भाग कर उसके हाथ चूम लें!!'

फिर उन्होंने 'मतवाला' जी की उस सम्पादकीय टिप्पणी की बेहद तारीफ़ की, जिसका हेडिंग था—'तुम डार-डार, हम पात-पात!' और बताया कि इसी सम्पादकीय पर अँग्रेजी सरकार के शासन काल में, अँग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करने का दोषी घोषित कर मतवाला जी को जेल के मजबूत सींखचों में ठूँस दिया गया था; क्योंकि यह टिप्पणी अँग्रेजी सरकार के लिए खुली चुनौती थी।

अन्त में निराला जी ने कहा—'मतवाला में अपनी एक कविता के साथ, मैंने पहली बार अपना नाम पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छपवाया। 'मतवाला' जी की हार्दिक इच्छा थी कि मैं साहित्य में नयी और निराली चीज पेश कर रहा हूँ, इसलिए अपना नाम 'निराला' रक्खूँ।...वे कलाकार ही नहीं, स्वयं कला के जौहरी भी थे और एक ही नज़र में पहिचान लेते थे कि किसमें कितना पानी है, कौन हीरा है, कौन काँच। उन्होंने मुझे परखा और हाथ बढ़ाकर मुझे अपने साथ उठने और आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया; और यह भी किसी हद तक सच ही है—'ग़र मतवाला न होता, तो निराला न होता!'

हम घी Afford (व्यय वहन) नहीं कर सकते

दिनांक १३-१०-५३ को सायंकाल निराला जी चबूतरे पर बैठे कह रहे थे—'सुशीला सिंधी ने कलकत्ते में नीरा होटल में हमें जो स्क्वैश पिलाया, उसी समय हमारी तबियत डोली थी। उसी का प्रभाव आज दिखाई पड़ रहा है।'

फिर कहने लगे—'हमने अधिक drinking (मद्य-पान) कलकत्ते से आने पर की जिसके कारण तबियत भारी हो गई। आज कुछ जुकाम भी हो गया है।...एक महाशय जबलपुर ले चलने का पैग़ाम लेकर आए थे, किन्तु हम जा तो सकते नहीं। हम कुछ पूछते भी नहीं। लोग हमसे क्या चाहते हैं, पता नहीं।'

कुछ देर तक बैठे-बैठे स्वगत भाषण करते रहे। फिर भोजन मंगाते हुए कहा—'कुँअर! भोजन लाओ।' और तुरंत ही एक थाली में चार रोटियाँ, आलू-बैंगन की तरकारी और एक कटोरे में दूध आ गया। निराला जी ने कुछ बिना चुपड़ी रोटी माँगी। फिर पास रक्खे हुए दही में से आधा दही भीतर पहुँचाकर, आधे को तरकारी में मिला लिया।

शिवगोपाल ने प्रश्न किया—'तरकारी के साथ दही, पंडित जी!'

'तरकारी हमारे यहाँ तेल में बनती है'—पंडित जी ने कहना शुरू किया—'घी हम Afford (व्यय-वहन)नहीं कर सकते। कलकत्ते के जलवायु में, जहाँ आकाश-मण्डल में जलीयता अधिक है, तेल खाया जा सकता है; किन्तु प्रयाग आदि गर्म जगहों में तेल खाना उचित नहीं। अतः तैलाक्तता नष्ट करने के लिए दही मिला देते हैं। तेल भी हम खाते हैं।...'

इसी बीच मैंने पूछा—'मैंने सुना है, पंडित जी! जब आप डलमऊ में रहते थे, तो कडुआ तेल पी जाते थे!'

जैसे मेरे मुँह से कोई आश्चर्यजनक बात निकल गई हो। पंडित जी ने कई बार दुहराया—'तेल पी जाते थे! इस का क्या मतलब? कौन तेल पीता है, यह भी हम नहीं जानते! हमें जहाँ तक याद है हमने कड्डू तेल कभी नहीं पिया। हाँ, डलमऊ और खुशरूपुर के हमारे दूध पीने के रिकार्ड हैं।'

'सन् १९१४-१५ में जब हम खुशरूपुर में रहते थे, तो एक भैंस, जो १५ सेर दूध देती थी, उसका पाँच सेर दूध पी जाते थे। दाल को घी में पकाते थे। हमने डलमऊ में रहकर कुछ दिन शरीर में इत्र से मालिश भी की। हाँ, लखनऊ में जब हम रहते थे, महफिलें attend (उपस्थित) करनी होतीं, तो हम जाड़ों में कस्तूरी और अगरु सुगन्धित तेलों से बालों को बिल्कुल तर कर लेते थे; परन्तु हमने कभी तेल नहीं पिया।'

दूसरी बात शिवगोपाल ने पूछी—'डलमऊ में आपने इतनी तरकारियाँ सुखायीं, कि कई मन एकत्रित हो गई थीं?'

निराला जी ने इस प्रश्न का उत्तर बड़ी तन्मयता से दिया—'हमने वहाँ चार मन से ऊपर केले, चना का साग, मेथी, गोभी, पालक, चौलाई आदि सुखाया था और यहाँ (प्रयाग में) भी कई मन; जो चन्दो के यहाँ अब भी हैं। हमारा वज़न पहिले २५० पौंड था। यहाँ भी हमने सेव, अनार कई-कई सेर सुखाए थे, पर तुमसे किसने बताया?'

'भैया रामकृष्ण ने!' शिवगोपाल ने कहा।

'हाँ, ठीक है, किन्तु हम कभी तेल नहीं पीते थे। कलकत्ते से लौटने के बाद पाँच-छः दिन हमने खूब कलिया बनवाई। उसमें आधा तेल, आधा घी छुड़वाते रहे। फिर क्या था, पेट जैसे जल जायेगा। ब्रह्माण्ड गर्म हो उठता था। तेल हमारे गाँव में बहुत पैदा होता है, पर खाया नहीं जाता।'

निराला का निरालापन

अपने पिछले जीवन के विषय में बताते हुए निराला जी कह रहे थे—'सन् १९३४ में तो रामकृष्ण भी लखनऊ में था। हमारा चाय का खर्च (होटल में) १,५०० प्याले था, परन्तु आजकल मास में एक सौ पचास प्याले ही है। हम बालों में रोज साबुन लगाते थे। गोदरेज न० १ तथा व्हाइट रोज़ साबुन आदि का प्रयोग करते थे। बालों में सेण्ट का प्रयोग इसलिए करते थे कि रेडियो तथा मजलिसों में जाना पड़ता था। अतएव बालों में एक शीशी इत्र चुपड़ लेते थे और फिर क्या था? मस्ती आ जाती थी। साल में लगभग दस शीशियाँ इत्र की लगती थीं। कुल १५०) सालाना इनमें (बालों में) खर्च होता था। जाड़े में कस्तूरी और गर्मियों में अगरु प्रयोग हम करते थे। ये सब चीजें स्वदेशी ही होती थीं।...मांस हम १९४२ में यहीं दारागंज में बड़ी विधि से बनाते थे, घी से। अम्बर कस्तूरी छोड़ दिया करते थे। तीन सेर तक मांस पकाया जाता था। किसी अन्य को न बनाने देते थे।...'

खाने-पीने, लिखने-पढ़ने, रहन-सहन, हर मामले में निराला हमेशा निरालेपन से रहे हैं। दिन में दस-दस सेर दूध भी उन्होंने पिया है और कभी दस-दस दिन खाना क्या, चार दानों की सूरत भी नहीं देखी। जिन्दगी में बड़ी-बड़ी मार खाई, पत्थर चबाए, पर कभी झुके नहीं, रुके नहीं और इसीलिए तो निराला साहित्य और शरीर दोनों में निराला है। दूसरों से एकदम अलग, बिल्कुल निराला।

निराला बूढ़ा हो गया

सात दिन लगातार दौड़धूप करने के बाद जयगोपाल ने पंडित जी को देहरादून चलने के लिए तैयार कर ही लिया। डी० ए० वी० कालेज की डायमंड जुबिली के शुभ-अवसर पर होने वाले कवि-सम्मेलन के सभापति पद के लिए उन्हें आमन्त्रित किया गया था। पहली बार तो तार देखते ही उन्होंने कह दिया—'लिख दो, हमारी तबियत नाशाद है। हम नहीं जा सकेंगे।' लेकिन मेरे और जयगोपाल के यह कहने पर कि—'विद्यार्थियों का विशेष अनुरोध है; उस प्रदेश की जनता महाकवि निराला के दर्शन के लिए व्याकुल है; आप अवश्य चलिए, गुरूजी !' निरालाजी ने चलने की स्वीकृति दे दी।

१४ ता० को प्रातःकाल गाड़ी पर जाने के लिए जब हम लोग पंडित जी के पास पहुँचे तो स्टेशन चलने के लिए वह बाहर आकर खड़े हो गए। बाहर की खुली हवा लगने पर उनके मस्तिष्क में एकदम यह बात आ गई—'जब इलाहाबाद में ही इतनी सर्दी है, तो देहरादून में न जाने कितनी सर्दी होगी।' और अपने तख्त पर बैठ कर रजाई ओढ़ते हुए बोले—'नहीं, नहीं, हम नहीं जाएँगे, जयगोपाल ! वहाँ तो आठ कम्बल की सर्दी होगी ?'

जयगोपाल पंडित जी के लिए मालिश का तेल ढूँढ रहा था। गुरू जी की बात सुनते ही चौंककर बोला—'आपके लिए आठ क्या, अट्ठारह कम्बल का इन्तजाम हो जायेगा, पंडित जी !'

मैंने बात आगे बढ़ाई—'आपके आने की सूचना दी जा चुकी है। जनता आपके दर्शनार्थ वहाँ एकत्रित हो रही होगी। आप चलिये तो सही, गुरु जी ! आपको कोई कष्ट न होगा। हम सब ठीक कर लेंगे।'

'तुम लोग समझते क्यों नहीं ? जिद करते हो, बेकार परेशान करते हो। जानते नहीं, निराला अब वह निराला नहीं, जो जहाँ चाहे आँधी-पानी में खड़ा रह सके। निराला अब बूढ़ा हो गया है, उसकी नसें सिकुड़ने लगीं, रगों का खून सूखने लगा; उसमें काम करने को नहीं, मूर्तिवत् जड़ बैठे रहने की शक्ति शेष रह गई है।'

देहरादून कवि-सम्मेलन में सुनाने के लिए महाकवि का संदेश पढ़ता हुआ, बड़ी कोठी के पीछे वाली गली में धीरे-धीरे चलता हुआ, मैं सोच रहा था—'आख़िर महाकवि को हो क्या गया ? उनके मन में ऐसी क्या चीज़ टूट गई, जिसका दर्द उनकी हर साँस के साथ उभरता जाता है कि जिसको वह मिटा भी नहीं सकते, भुला भी नहीं सकते ? बहुत सोचने पर भी मैं यह न समझ पाया कि महाकवि का विश्वास कैसे टूट गया ?

दिमाग़ पर बहुत ज़ोर देने पर मैं केवल इतना ही समझ पाया कि साहित्यिकों की अखाड़ेबाजी, पार्टीबाजी, महाकवि के विरुद्ध किये गये भ्रामक प्रचार, अनुचित व्यवहार तथा उन की स्वस्थता-अस्वस्थता पर उठाए गए घृणित विवाद ने ही महाकवि का दिल तोड़ दिया; उसको असमय में ही बूढ़ा बना डाला; नहीं तो न जाने कितने वर्ष पूर्व ही निराला गा उठे थे—'अभी न होगा मेरा अंत ।...'

अब तो लप्सी ही खानी पड़ेगी

दिनांक १६-१०-५३ को अपने बचपन की बात बताते हुए निरालाजी ने कहा —'जब हम १०-११ वर्ष के थे, तब 'स्वदेशी अन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। इसी समय महिषादल में महाभागवत् बाँची गई थी, जिसे हमीं ने बाँचकर सुनाया था।'

सायंकाल पहुँचे तो भोजन कर रहे थे। बाद में बताया—'सुबह एक दाँत उखाड़वाया है। खून बहुत गया था, किन्तु अब ठीक है।' फिर कहा—'अब तो तम्बाकू वाले सभी दाँत गिर रहे हैं। दो दाँत और हिलते हैं। अब तो लप्सी ही खानी पड़ेगी या फिर रोटियों को पानी या दूध में फूलने दिया जाय, तो फिर खाया जाय।......'

अक्लमन्दों को नाने खुश्क

सहारनपुर से, नयी-पीढ़ी के उठ-उभरते हुए तरुण गीतकार कवि-मित्र शान्तिस्वरूप 'कुसुम' का पत्र आया—'मेरी तबियत पहिले से भी अधिक खराब

है। क्या करूँ ? लाचार हूँ। बहुत कुछ कर रहा हूँ, किन्तु नौकरी पर जाना कैसे बन्द करूँ ? काफी दिनों छुट्टी पर रहा। आखिर चार बच्चे हैं, मैं हूँ, पत्नी है—कहाँ पेट भरेंगें ? गुजर चलनी मुश्किल हो रही है।...'

कल दूसरा पत्र आया है—'दिमाग़ में ठीक रात के दो बजे दौरा उठता है। डाक्टरों की समझ में रोग नहीं आता। मर्फिया का इन्जेक्शन भी बेकार सिद्ध हो गया। ठीक रात को दो बजे नींद टूट जाती है। सिर के आधे भाग में दर्द शुरू हो जाता है। बढ़ता जाता है, कुछ इस तरह कि सहना मुश्किल हो जाता है। दर्द से चीख-चीख पड़ता हूँ। बच्चों की तरह बिलख-बिलख कर रोता हूँ।...कल से पत्नी की तबियत खराब है। पैर सूज-सूज कर मोटे होते जा रहे हैं। लगातार घंटों तक बेहोशी बनी रहती है। माँ के लाड़-प्यार से अलग, घर के, मरघट की सी खामोशी के, बोझिल वातावरण में चारों बच्चे ज़मीन पर लेट गए है। कोई चित्त, कोई उलटा, कोई दाँई करवट, कोई बाँई करवट।...खुद बीमार हूँ, बीबी बीमार है; बच्चे जिन्दा रहेंगे या मुर्दा हो जायेगें, कुछ दिनों में, कह नहीं सकता। पास में पैसा नहीं। घर में कोई आदमी नहीं। मैं अकेला हूँ, दो-हड्डी-पसली का सींकिया पहलवान। बैंक जाऊँ ? खाना बनाऊँ ? दवा लाऊँ ? क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आता...'

दोनों पत्र मोड़कर जेब में डाले और हर रोज़ की तरह पंडित जी के निवास स्थान पर जा पहुँचा। हाथ जोड़े, नमस्कार किया और चरण स्पर्श कर चौकी पर बैठ गया। बैठे-बैठे पाँच मिनट हो गए, पर पंडित जी कुछ बोले नहीं। यह एक अजीब बात थी कि मैं जाऊँ और पंडित जी कुछ कहें-सुने नहीं। पाँच मिनट की वह खामोशी मुझे काट खाने लगी, तो मैंने ही स्तब्धता भंग की—'पंडित जी ! सहारनपुर से 'कुसुम' जी का पत्र आया है। वे, पत्नी, बच्चे सब बीमार हैं। पास में पैसा नहीं, साथ में आदमी...'

'बस बहुत कुछ सुन लिया, रहने दो।' एक पत्र मेरे हाथ में देते हुए पंडित जी ने उत्तर दिया—'आचार्य जगदीशचन्द्र के सुपुत्र 'शरद्' का पत्र आया है। प्रे र में घाटा है। औषधालय ठीक नहीं चल रहा। पिता जी अत्यंत आर्थिक संकट में हैं।' फिर कुछ क्षण पश्चात् निराला जी

ज़ोर .जोर से बड़बड़ाने लगे—'स्वर्गीय विद्यार्थी जी के सहयोगियों का यह हाल ? रोटियों के लाले पड़े हैं ! बच्चे भूखों मर रहे हैं ! साहित्यिक कृतियों का कोई ग्राहक नहीं ।' और फिर एकदम जोर से चीख उठे—'मैं कहता हूँ—ये बीबी-बच्चों वाले होकर भी क्यों साहित्य को पालने में लगे हैं ? साहित्य के राक्षस को क्यों सन्ततियों का खून पिला रहे हैं ? जिस Intelligentsia के पीछे हमने अपनी जिन्दगी खपा दी, उससे हमें क्या मिला ? हमारी जमीन पासियों ने छीन ली ? बच्चे-पोते बे घर-बार हो गए ?'

कुछ क्षण चुपचाप बैठे रहे । गुमसुम—जैसे कोई बड़ी गहरी बात सोच रहें हो । मन में उठे हुए तूफान के शान्त हो जाने पर फिर बोले—'उनको लिख दो Intelligentsia (बुद्धिजीवी) बड़ी-बड़ी Buildings (इमारतों) में नहीं, टूटे-फूटे भोपड़ों में पनपता है ।' मैं उठा तो पंडित जी स्वतः ही बड़बड़ा रहे थे—'उसको ज्ञात नहीं शायद, कवि अभाव में ही पलता है ।...लक्ष्मी-सरस्वती का साथ नहीं निभता । दोनों एक दूसरे की सौत हैं । भगवान् का न्याय भी विचित्र है—और फिर .जोर से गुनगुनाने लगे—'अक्लमन्दों को नाने खुश्क और हलुवा रज़ीलों को...'

पसे मर्ग़न समझ में आयेंगे

दिनांक १५-१-५६ को प्रातःकाल हम पंडित जी के यहाँ गए । रजाई लपेटे वे खाट पर बैठे थे । चरण स्पर्श करते ही शिवगोपाल को आज्ञा हुई—'तेल मालिश करो ।'

शिवगोपाल मालिश करने लगा । कुछ क्षण पश्चात् मैंने प्रश्न किया—'पंडित जी ! अपने बारे में आप का क्या विचार है ?'

आँखें मूँदे-मूँदे पंडित जी ने उत्तर दिया—'हमारे देश की तो यही परम्परा रही है कि मरने के बाद आदमी की कीमत आँकी जाती है । प्रेमचन्द अपनी जिन्दगी में भूखों मर गए; प्रसाद ने घुट-घुटकर दम तोड़ दिया; गाँधी जी को

भी, मरने के कुछ देर पहिले तक, लोग गालियाँ देते थे; और आज धूमधाम से उनकी जयन्तियाँ मनाई जाती हैं; उनकी श्रेष्ठता के ढिंढोरे पीटे जाते हैं। जीते जी उनका खून जलाया जाता है और मरने के बाद उनके नाम हलुआ-पूड़ी मिनसे जाते हैं।'

कुछ क्षण मौन रहकर—'अपने बारे में हमारी राय है' कहते हुए एक शेर सुनाया—

'पसे मर्ग़न समझ में आयेंगे, ये कौन हमदम थे;
समर-ओ-गुल ख़िज़ाँ में, गरमियों में आबे जमजम थे !'

दो-तीन बार इसी को गुनगुनाया, फिर स्वयं तारीफ कर उठे—'वाह, यह तो खूब अच्छा बन पड़ा है। हाँ, इसे नोट कर लो, फिर कभी भूल जाँय। अच्छी चीज़ बन पड़ी है।'

भाव न समझ सकने के कारण मैंने अर्थ समझाने का आग्रह किया, तो पंडित जी ने अंग्रेजी में लिखवाया—'After the death they will understand who these fellow workers were. They were like fruits and flowers in autumn and in summer like heavenly waters.'

[उनकी मृत्यु के बाद ही लोग समझेंगे कि उनके सहयोगी क्या थे। तब वे समझेंगे कि वे पतझर में पुष्प और फल तथा ग्रीष्म में स्वर्गिक जल के समान थे।]

शिवगोपाल मालिश करता रहा, मैं आस-पास पड़ी हुई पत्र-पत्रिकाओं को उलटने-पलटने लगा और पंडित जी आँखें मूँदे ज़ोर-ज़ोर से इसी शेर को गुनगुनाते रहे।

ख

बसंत-पंचमी—निराला की जन्म-तिथि

मुझे ठीक-ठीक याद नहीं उन सज्जन का नाम, जिन्होंने पंडित जी के जन्म-दिवस पर उनसे पूछा था—'पंडित जी ! आप का जन्म दिवस...?'

'मेरा जन्म दिवस...?' कहते-कहते महाकवि की आकृति गंभीर हो गई थी। उनके चेहरे की हड्डियाँ सख्त हो आईं, मस्तक की नसें उभर आईं। ऐसा महसूस हो रहा था, जैसे वह कोई बात सोच रहे हों।

अनायास ही उनके चेहरे की गंभीरता, विषाद की कालिमा में परिवर्तित हो गई। उन्नत ललाट नीचे झुक गया। अपने झुके मस्तक पर हाथ फेरते हुए धीमे स्वर में पंडित जी बोले—'हमारी पुत्री सरोज ने, हमारी जन्म कुण्डली जला डाली थी। इसलिए हमने बसत-पचमी का दिन तय कर लिया; क्योंकि इसी दिन सरस्वती की पूजा होती है न ? हाँ, हमने 'सरोज-स्मृति' में लिखा है...?'

मुझे लात मार कर निकाल दीजिए

कालिदास जयंती समारोह में संस्कृत में बोलते हुए निराला जी ने कहा—'कालिदास संसार का महानतम कवि था। यद्यपि अंग्रेजी में शेक्सपियर, जर्मन में गेटे, बंगला में रवीन्द्र तथा हिन्दी में तुलसीदास जी के नाम समकक्ष के हैं, किन्तु कालिदास सबके गुरू थे। उनकी रचनाएँ सर्वोत्कृष्ट

हैं; किन्तु उनके बाद यदि गणना हो तो 'निराला' की कृति 'अनामिका' आयेगी।'

यह कोई गर्वोक्ति नहीं, सत्य है और महाकवि के आत्मविश्वास का ज्वलंत उदाहरण। निराला जी विश्व-साहित्य से भलिभाँति परिचित हैं। अतएव जब उनके साहित्य की बात आती है, तो कहते हैं—'यदि विश्व-साहित्य की कोटि में मेरी कृतियाँ नहीं तुल पातीं, तो मुझे लात मार कर बाहर निकाल दीजिए। मैंने जो कुछ भी लिखा, सदैव नूतनता के दृष्टिकोण से लिखा।'

हमारे बाप-दादों की तलवारें चुराई जा सकती थीं, हमारी कलमें नहीं

१२ जनवरी १९५४ को ठाकुर गोपालशरण सिंह की हीरक जयंती सप्ताह के उत्सव पर श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के घर पर विद्वानों के समक्ष बोलते हुए निराला जी ने कहा—'मैं ठाकुर गोपालशरण को लम्बे अरसे से जानता हूँ। वे मुझसे बड़े हैं। उनके भाई दिवाकर को भी जानता हूँ। वे अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं।'

'हम प्रयाग में ऐसे विद्वान घराने का तहेदिल से सम्मान करते हैं। आपके अभिनन्दन में हम तन्दुरुस्ती खराब होने के कारण साहित्य सम्मेलन न जा सके; आप यहाँ आए, बड़ी कृपा की।'

'आपसे ज़्यादा शरीफ़ विद्वान या हस्ती का आदमी या यों कहें घराना नहीं मिलेगा। आपका जन्म रींवा में गढ़ी में हुआ, तो हमारा जन्म महिषादल में, जहाँ राजाबहादुर थे, हुआ था। हम गढ़ी से खूब वाकिफ़ हैं। हमें जो खिदमतें गुज़ारनी पड़ीं उनका बयान नहीं हो सकता। यह नहीं कि हम फ़ारसी से वाकिफ़ न हों, किन्तु मश्क न होने के कारण अल्फ़ाज़ ज़बान पर उतनी सरलता से नहीं आते। हम संस्कृत में पाणिनि, अष्टाध्यायी और कौमुदी आदि पढ़े हुए हैं। साहित्य वेदान्त हमारा पढ़ा है, पर हम उसके साथ न थे। हमने लम्बी ज़िन्दगी तक हिन्दी की सेवा की और धक्के सहे, पर बच गए। हम गरीब तो थे, पर न थे...!'

'वेद से अंग्रेजी तक की हकीकतें हम रख सकते हैं। अंग्रेजी जानने के कारण हमारा सम्बन्ध जर्मन एवं फ्रेञ्च से है और फारसी के कारण अरबी तथा संस्कृत के कारण अन्य भारतीय भाषाओं से, क्योंकि संसार में अंग्रेजी, संस्कृत और फ़ारसी यही तीन बड़ी भाषाएँ हैं।' फिर ठाकुर गोपालशरण जी की ओर मुँह करके बोले—'आप गढ़ी के रहने वाले हैं, हम महिषादल के। हमारे पिताजी महिषादल में बड़े ज़मादार थे। अपनी योग्यता से आप हमको इस प्रकार चकित नहीं कर सकते; क्योंकि We have excelled in intelligence for last 50 years and you cannot confound us thus.' (पचास साल से आज तक बुद्धि में हमसे कोई ऊपर न जा सका।)

कुछ देर रुककर पंडित जी ने अपना भाषण समाप्त किया—'हमारे बाप-दादों की तलवारें चुराई जा सकती थीं, किन्तु हमारी कलमें नहीं, जैसा कि गालिब ने लिखा है, वे हमेशा चलती रहेंगी। हिन्दी तो हमारे घर की देवियों की भाषा है। महादेवी वर्मा की हिन्दी जाकर देखें! Illtreatment (दुर्व्यवहार) के कारण ही हम अपनी डिग्रियों को छिपाए रहे, जिनके आगे कोई नहीं आ सकता। अंग्रेजी के माध्यम से सारा संसार बँधा है। हम अंग्रेजी ठाकुर साहब से यही अर्ज करते हैं, कि जो सेवाएँ उन्होंने की हैं, वें बहुत हैं और यदि वे इस पुस्तक 'जगदालोक' को न भी लिखे होते, तब भी उनके सम्मान में कोई कमी न आती।'

न तुलसी ग्रेजुएट था, न रवीन्द्र, न निराला

श्रीमती महादेवी वर्मा की अध्यक्षता में होने वाले कविसम्मेलन में निराला जी मैनपुरी गए। उसी दिन लगभग साढ़े पाँच बजे सायंकाल आचार्य चतुरसेन शास्त्री निराला जी से मिलने आए। उन्होंने महाकवि से दो प्रश्न किए—

(१) निराला जी, आपका स्वास्थ्य कैसा है?

(२) निराला जी, आपके बाल तो पक गए !

पंडित जी ने दोनों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया—

(१) अच्छा है, पर पहिले जैसा नहीं ।

(२) बाल तो तुम्हारे भी पक गए होंगे !

शास्त्री जी ने कहा—'नहीं !'

'तो खिजाब लगाए होंगे ?' निराला जी ने मुस्कुराते हुए कहा । सब खिलखिलाकर हँस पड़े । इतने में शास्त्री जी उठ खड़े हुए और बातों-बातों में ग्रेजुएट शब्द ला ही तो दिया ।

निराला जी ने बिगड़कर कहा—'न तुलसी, न रवीन्द्र और न सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—तीनों में से कोई ग्रेजुएट नहीं; किन्तु जिसकी हिम्मत हो, हिन्दी या अंग्रेजी में आकर बात कर जाए, वर्ना...'

यह साहित्य सम्मेलन है; संकुचित धार्मिकता की प्रदर्शनी नहीं

सन् १६३६ में हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन बनारस में हुआ । निराला जी सम्मेलन के भोजनालय में अपने एक मुसलमान साहित्यिक मित्र को भोजन कराने में व्यस्त थे, यद्यपि सम्मेलन के भोजनालय में आमिष भोजन की मनाही थी । निराला जी इस पाबन्दी पर बुरी तरह खफ़ा थे । सम्मेलन के जिम्मेदार कार्यकर्ताओ को सुना-सुना कर वे ज़ोर-ज़ोर से कह रहे थे—'यह साहित्य सम्मेलन है, हिन्दुओं की संकुचित धार्मिकता की प्रदर्शनी नहीं ।' और खाते खाते अपने मुसलमान मित्र को भी प्यार से डाँट रहे थे—'प्यार ! तुम्हारे यहाँ की मुहावरेबाजी भी खूब है । बात-बात पर चार चाँद लगाते घूमते हो ।'

हम बारह वर्ष के कवि हो गए थे

'हम बारह वर्ष के थे, तभी कवि हो गए थे । कविता लिखा करते थे ।

सुन्दर ढंग से अपनी मौलिक रचना प्रस्तुत किया करते थे। किसी के 'स्टाइल' की नक़ल नहीं करते थे।' पंडित जी अपने बचपन को स्मरण करते हुए बता रहे थे—'हमारी उम्र के लड़के, कविता लिखना क्या, पढ़ना भी नहीं जानते थे। बड़े-बड़े ग्रेजुएट्स् को कविता पढ़कर समझने-समझाने की तमीज नहीं थी। इसीलिए हमने पढ़ाई बन्द कर दी और ग्रैजुएट होने की आवश्यकता भी क्या थी?'

फिर 'स्टूडेण्ट' (विद्यार्थी) को Proper facilities (उचित सुविधाएँ) यदि नहीं दी जातीं, तो वह पढ़ेगा ही क्या? हाई स्कूल तक पढ़ लिया, तो उसके बाद अभ्यास से वह स्वयं सब कुछ सीख सकता है। हमने तो इसी प्रकार यही बृहद् ज्ञान अर्जित किया है।'

•

Intelligentsia (बुद्धिजीवी) बड़ी-बड़ी कोठियों में नहीं पनप सकती

उसी दिन बातचीत चलने पर पंडित जी कहने लगे—'परमानन्द जी हमें कलकत्ते में बसंत-पंचमी तक रोक रहे थे; किन्तु हमें बड़ा ताज्जुब है कि लोग किसी के स्वभाव को क्यों नहीं पहिचान पाते...उन्हें यह पता नहीं कि हम वहाँ नहीं रह सकते। यदि हम कहीं रह सकते थे, तो वह हैं स्कॉटिश चर्च, मतवाला ऑफिस तथा वेलेजली स्क्वायर में स्थित महिषादल राज्य-भवन, उनकी सफाई करके हम रह सकते हैं, क्योंकि Intelligentsia (बुद्धिजीवी) वहीं पनप सकती है, बड़ी-बड़ी Buildings (इमारतों) या कोठियों में नहीं।... ये कुछ नहीं हैं। कल तक ऐसे ही मकान थे।'

'हरीसन रोड पर अब भी कुछ पुराने मकान हैं। कॉरपोरेशन एरिया के आसपास माहेश्वरी-भवन आदि भी हमारे प्रिय स्थान हैं। फिर महाराजा ठाकुर प्रद्योतकुमार, जोडा साखों का रवीन्द्र-भवन भी अच्छे स्थान हैं।...जहाँ हम एक बार रह चुके हैं, वहीं रह सकते हैं।'

हम कोई भाट हैं

एक दिन कोई सज्जन, अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ होने वाले काव्य-समारोह में सम्मिलित होने के लिए निराला जी को आमंत्रित करने के लिए आए। पंडित जी ने पूछा—'किसलिए समारोह हो रहा है ?'

'जी, बस यूँ ही। चाचा जी कल एक मुकदमा जीत गए। अपना रमेश जिद कर बैठा। वह भी कुछ कागज पोतता है।' दाँत निपोरते हुए, ही ही करके, उन्होंने अपनी बात कही और फिर पंडित जी की ओर मायाजाल फेंका—'लाला जी कह रहे थे, पंडित जी के लिए रजाई और रु...'

बीच ही में बात काटकर, पंडित जी चिंघाड़कर बोले—'भाग जाओ यहाँ से ! मैं कहता हूँ, भाग जाओ !!'

और डर के मारे वे सज्जन ऐसे भागे कि अपना नया जूता और साफा भी वहीं छोड़ गए। मैं पहुँचा तो पंडित जी बैठे-बैठे बड़बड़ा रहे थे—'लोगों ने हमें न जाने क्या समझ लिया है ? हम कोई भाट तो हैं नहीं, कि जो जहाँ, जो चाहे, कहला ले ?...कवियों का यह उपहास ?...यह कला का अपमान है, कलाकार का अपमान है ?' और उस पूरे दिन वह न किसी से कुछ बोले, न कुछ खाया-पिया।

सब कलाओं का रहस्य

पैर दबाते-दबाते गुरु जी से एक दिन पूछा—'पंडित जी ! काव्य कला का रहस्य क्या है ?' कुछ देर तक पंडित जी अंग्रेजी में गुनगनाते रहे, फिर ध्यान आते ही बोले—'हाँ, तो क्या पूछा तुमने ? काव्य कला का रहस्य क्या है ?' कुछ क्षण रुक कर वे फिर बोले—'तुम्हारे इस प्रश्न ने मुझे आचार्य जगदीशचन्द्र की याद दिला दी।...आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, सहारनपुर वाले। बड़ी अच्छी कहानियाँ लिखते थे। मुझे उनकी कहानियाँ बहुत पसन्द हैं।' कहते-कहते महाकवि रुक गए, जैसे उनके गले में कुछ अटक गया। आँखों की

कोर से दो बड़े-बड़े आँसू झलक आए, शायद अनायास ही बिछुड़े मित्र की याद आ जाने से। 'पिछले पन्द्रह बीस वर्षों से मुझे जगदीशचन्द्र का पता नहीं। वह उन इन-गिने व्यक्तियों में हैं जिन्होंने पहली ही मुलाकात में मुझे अपना बना लिया। यह बात उनकी मुझे बार-बार याद रहेगी। एक बार गणेशशंकर विद्यार्थी ने आचार्य जी से पूछा—'आचार्य जी! कहानी-कला का रहस्य क्या है? मिश्र जी ने मित्र की गम्भीर मुद्रा को देखा, फिर समझाते हुए बोले—कहानी कला ही क्या, प्रत्येक कला का रहस्य है—क्या पकड़ ले और क्या छोड़ दे! जो पकड़ने-छोड़ने की इस कला में निपुण हो जाता है वह कभी मार नहीं खा सकता। वही सफल लेखक है, वही कुशल कलाकार। आचार्य जी के इस उत्तर को याद कर लो, बेटा! सब कलाओं की सफलता का महामंत्र हमने तुम्हें बता दिया।'

बंकिम-शरत्-टैगोर-निराला

'बंकिम और शरत् दोनों Long story (बड़ी कहानी) लिखने में बड़े सिद्धहस्त थे'—पंडित जी ने शरत् और टैगोर के बारे में पूछने पर उत्तर दिया—'और टैगोर तो Short story (छोटी कहानी) लिखने में Par Excellent (सिद्धहस्त) थे; परन्तु जहाँ रविबाबू ने बड़ी कहानी लिखने का प्रयास किया, बुरी तरह असफल रहे। कारण यह कि कहानी की Theme (विषय वस्तु) ही वे ठीक न चुन सके।'

'और आप पंडित जी?' मैंने प्रश्न किया।

'मन की उथल-पुथल कागज पर उतार देता हूँ। सफलता-असफलता क बात किसी और से पूछना। हाँ, बंकिम के आनन्द-मठ की कहानी बहुत ही उच्च कोटि की है। हमने इसका अनुवाद भी किया था।'—पंडित जी ने उत्तर दिया।

'पंडित जी! आजकल कुछ लिख रहे हैं या नहीं?'

'इन दिनों तो ऐसी गति रुकी है कि क्या कहें ? कुछ लिखा नहीं जाता। अब हम जितना याद करने की कोशिश करते हैं, पुराना भी भूलते जाते हैं।' निराला जी ने मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया।

मेरी कविताएँ

अंग्रेजी के कवियों की वर्णनशैली से अपनी तुलना करते हुए निराला जी ने कहा—'मैंने वर्ड्सवर्थ, शेली एवं कीट्स से उच्चत्तर की कविताएँ लिखी हैं। मेरा वर्णन किसी भी प्रकार उनके वर्णन से कम नहीं। मेरा बादल राग इसी का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।'

कितना आत्मविश्वास है कवि को अपनी कला पर ! सचमुच यह विश्वास किसी श्रेष्ठ कलाकार की कसौटी है। यह अहं नहीं, कवि का आत्मविश्वास है; क्योंकि वह निःसंकोच स्वीकार करता है, जो उसकी कमी है। यही दृढ़ता, यही आत्मविश्वास तो अद्भुत तेजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण करता है और निराला के व्यक्तित्व में तो चार चाँद लगे हैं !

आप अंग्रेजी क्यों बोलते हैं

दिनांक ६-२-५४ को प्रातः ११ बजे के लगभग श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' के छोटे भाई निराला जी से मिलने आए। सर्वप्रथम प्रश्न उन्होंने निराला जी से किया—'पंडित जी ! आप अंग्रेजी क्यों बोलते हैं ? आप को तो राष्ट्रभाषा में बात करनी चाहिए ?'

निराला जी ने उत्तर दिया—'हमने अध्ययन के नाते और इसलिए भी कि यहां के अधिक आदमी हिन्दी में ही सब काम-काज करते हैं, हिन्दी में लिखा। किन्तु बोलचाल में हम या तो फारसी का प्रयोग करते है या अंग्रेजी का; क्योंकि हिन्दी जब भी बोलना चाहते हैं, ठीक से बोल नहीं पाते।'

श्रागन्तुक ने फिर ज़िद की—'नहीं, श्रापको तो राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही बोलना चाहिए। श्राप हिन्दी में नहीं बोलेंगे तो कौन बोलेगा ?'

पंडित जी ने उत्तर दिया—'अपनी Weakness (कमज़ोरी) और Reason (कारण) हमने तुम्हें बता दिया। यह बात नहीं कि हम हिन्दी में बोलना न चाहते हों, पर क्या करें, अल्फ़ाज़ उतनी आसानी से ज़बान पर नहीं आते, जितनी अंग्रेजी या फारसी के।'

दिनकर जी के भाई साहब ने इस बार जब फिर अपनी ज़िद पर अड़े रहने की कोशिश की तो उसकी उच्छृङ्खलता पर पंडित जी बिगड़कर बोले—'मैं तुम्हारे कहने से चलने वाला नहीं हूँ। तुम्हारा न तो ख़ादिम हूँ और न ख़ुद्दाम। यदि तुम 'दिनकर' के भाई होते, तो ऐसी बेहूदा बातें न करते। वह तो 'ग्रेजुएट' है और अच्छी अंग्रेजी जानता है। तुम रामधारीसिंह 'दिनकर' के भाई कैसे, जो हिन्दी के लिए इतना पक्षपात करते हो ?...तुम अपने को क्यों ,उसकी मरी पूँछ से बाँधते हो ? उसके बाद तुम उसकी मरी पूँछ को कहाँ तक घसीटोगे ?'

चौथी बार भी आगन्तुक ने यही कहा—'फिर भी आपको हिन्दी में ही बोलना चाहिए ?'

पंडित जी चिल्ला पड़े—'हिन्दी ! हिन्दी !! क्या हिन्दी ? बड़ा हिन्दी वाला आया... Get away, what has caused you to enter my room without my permission.' (निकल जाओ, तुम बिना मेरी अनुमति के भीतर क्यों आए !)

मैं तो हिन्दी जानता भी न था

अपनी कृतियों के विषय में बात चलने पर निराला जी अक्सर कहते हैं—'अणिमा' में Odes (गीत) हैं, 'बेला' में नये प्रयोग (ग़ज़ल, कव्वाली और ठुमरी आदि), 'नये पत्ते' में मुहावरे और 'अर्चना' में प्रौढ़ भाषा का स्वरूप; किन्तु अपने बारे में बात पूछने पर वे यही उत्तर देते हैं—'हमने जो कुछ किया सामने

है। हिन्दी के लिए जो अपमान पिए, यह उसी का फल है। अब कुछ लिखा जाता नहीं। समाज से दूर हैं, रुचि का पता नहीं।...हम तो जगह-जगह जाकर तरुणों को हिन्दी का ज्ञान कराते थे। इस सिलसिले में प्रायः भारत के कोने-कोने में हो आए हैं।......हमारी साहित्य-साधना के मूल में तो जैसे महामाया मनोहरा देवी का पूर्ण योग हो। जो कुछ भी सफलता मिली वह उन्हीं के कारण थी, नहीं तो, मैं तो हिन्दी जानता भी न था।'

हमारे अंतः से विश्व कवियों जैसे शब्द नहीं निकलते

८ जनवरी १९५४ को निराला जी ने एक गीत लिखा। यह गीत प्रायः अगस्त के बाद से पहला गीत था—

'शाप तुम्हारा गरज उठे सौ-सौ बादल,
ताप न वारा, कांपे पृथ्वी के तरुदल।'

कारण था इस प्रकार का गीत लिखने का। पानी बरस रहा था, कड़ी सर्दी पड़ रही थी, पूस का महीना बीत रहा था। निराला जी ने गीत पढ़कर सुनाया, उतनी ही तन्मयता और मस्ती के साथ, जितना एक नया कवि अपना नया गीत गुनगुनाता है। उसमें यत्र-तत्र कुछ संशोधन किये। कुछ छोटी कहानियाँ लिखने के लिए कहा। फिर अंग्रेजी में बोलते हुए अपनी कविता के लिए कहा—'हम लोगों के अन्तः से उस प्रकार से शब्द नहीं निकल पाते, जैसे विश्व कवियों के होने चाहिएँ।' 'विसम्भार' शब्द की उत्पत्ति बताते हुए उन्होंने आगे कहा—'यहाँ 'भार' शब्द ही पर्याप्त होता, किन्तु निराला इस प्रकार के Lucid (प्रवाहयुक्त), Easy (सरल), Direct (स्पष्ट) शब्द नहीं लिख पाते, यही तो उनमें दोष है। वे Derivatvies (क्लिष्ट) ही बराबर लिखते हैं।'

पूर्व ज्ञान—सफलता की कुंजी

२६ जनवरी १९५४ को विद्यार्थियों के अनुरोध पर पंडित जी मदनमोहन

मालवीय कालेजमें ध्वजारोहण करने गए। ध्वजारोहण करने के पश्चात् महाकवि को मालाएँ पहनाई गईं। विश्वविद्यालय के वयोवृद्ध अध्यापक पंडित देवीदत्त जी शुक्ल ने निराला जी का स्वागत करते हुए कहा—'कवि स्वतंत्रता का अनुभव काव्य द्वारा करते रहे। यही कारण था कि हमारी भावनाएँ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दृढ़ हुईं। निराला जी ने भी अनेक कविताएँ देश-जागरण के लिए लिखीं। उनकी कविता में रीतिकालीन शृंगार, नजाकत या लचक का अभाव है। उनकी कविता को 'मर्दानी कविता' कहा जा सकता है।'

निराला जी ने उपरोक्त सम्मान का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'पूज्य शुक्ल जी को प्रयाग का सारा इतिहास ज्ञात है; फिर भी उन्होंने 'निराला आज क्या है ?' की प्रशंसा की—'निराला पहिले क्या था ?' यह वह नहीं बता पाए। विद्यार्थियों को यदि पूर्व-ज्ञान नहीं कराया जाता, तो अध्ययन से कोई लाभ नहीं। विश्व-विद्यालय की शिक्षा द्वारा यदि ज्ञान-चक्षु स्वयं न खुल जाएँ तो ज्ञान व्यर्थ होगा। हमारे विद्यार्थियों को आज पठन-पाठन की समुचित सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं। यहाँ के पुस्तकालय, पब्लिक-लाइब्रेरी तथा विश्वविद्यालय-लाइब्रेरी कहाँ तक ज्ञानार्जन में सहायक होती हैं, यह नहीं कहा जा सकता ?'

'कवि, लेखक, गृहस्थ, सभी का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे पूर्व Role (कार्य) समझें, तभी सफलता मिलेगी, अन्यथा ऐसा जाल बिछा है कि कुछ पता न चलेगा। जवाहरलाल की बात लोग करते हैं। उसने अपनी लड़की के लिए पत्र लिखे, पिता के पत्र पुत्री के नाम, जो उसके पिता-पुत्री प्रेम के परिचायक हैं। बाद में उसने परिवार का नाम करने के लिए Autobiography (आत्मकथा) लिखी, किन्तु यह कहना मुश्किल है कि इन दोनों में किसका लेखक जवाहरलाल है !—That Jawaharlal may be not that whom you think so ? (हो सकता है कि जवाहरलाल वैसा न हो जैसा कि तुम समझते हो।) अतः Previous role (पूर्व-कार्य) जाने बिना ज्ञान अधूरा है। National flag (राष्ट्रीय पताका) की महत्ता जान लेने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि Nation (राष्ट्र) क्या है ? Nation (राष्ट्र) क्या नहीं है...?'

जलपान करते समय आसपास वालों से नौसीखये की तरह निराला जी पूछ रहे थे—'कैसी स्पीच रही!!' फिर स्वतः कहने लगे—'सुबह का मौका था, अल्फाज़ जल्दी न निकलते थे। Hopeless speech (व्यर्थ का व्याख्यान) तब भी न रही होगी ? Speech (व्याख्यान) क्या, एक Talk (वार्त्ता) थी, अपने अनुजों से।'

पढ़ो, पढ़ो, खूब पढ़ो

प्रातः जब हम लोग निराला जी के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा—'कल महादेवी जी ने कितना सुन्दर भाषण दिया। Last half of it was very musical & rhythmical. (उसका उत्तरार्द्ध बहुत संगीतात्मक और लयपूर्ण था।) उच्चारण उनका बड़ा प्राजल है।' इतना कहते हुए शेक्सपियर पढ़ने को कहा। यत्र-तत्र उच्चारण के बारे में बोलते हुए कहा—'पढ़ो, पढ़ो, खूब पढ़ो। पढ़ते-पढ़ते नली साफ हो जायेगी, तभी शब्दों का उच्चारण गले के नीचे से स्वतः होगा और वही स्वाभाविक उच्चारण होगा। रटाई ही इसकी दवा है। पाँच साल अखण्ड पढ़ाई से ही स्कॉलर बना जा सकता है। तभी मौलिकता आ सकती है। उछल-कूद मचाने से कुछ न होगा।......'

हमारी तो खिचड़ी शैली है

ध्रुवनाथ चतुर्वेदी से उत्तर मेघ का निम्न श्लोक—

'मुक्ताजालैः स्तन परिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै—
नैंशोमार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥'

सुनते हुए, निराला जी ने कहा—'कालिदास ने जिस विलास का वर्णन यहाँ किया, ऐसा लंदन और पेरिस में भी अलभ्य है। यदि संस्कृत पुष्ट करनी है और विश्व-कला का आनन्द लेना है, तो कालिदास का अध्ययन करो।'

इसके पश्चात् यह कहने पर कि आपने एक बार राहुल जी को अपने बारे में तीन घंटे तक Dictate कराया (बोलकर लिखाया), किन्तु आप हमें कुछ नहीं लिखा रहे हैं ? आप अंग्रेजी में कुछ Dictate कराएँ (बोलकर लिखाएँ) तो हम लोग 'लीडर' में जाकर दे दें ? तो निराला जी ने कहा—'हम तो बोलते हैं ऐसी ही खिचड़ी शैली में। आधे उर्दू-फ़ारसी के शब्द, आधे हिन्दी-संस्कृत के; किन्तु वह भी हिन्दी ही है—जैसे सन्तों की सधुकड्डी या खिचड़ी भाषा। यह तो सुनने वाले की होशियारी है कि वह उसके Remarkable points, grasp (महत्त्वपूर्ण बातें पकड़ ले) कर ले !'

Intelligence (बुद्धि) के लिए सर्वोतम घी

दिनांक १०-६-५३ को डलमऊ से रामकृपाल नाविक आया। प्रातः गंगा-स्नान कर जब वह वहाँ पहुँचा तो निराला जी ने कहा—'थोड़ी देर बैठो, नाश्ता लाए देते हैं।' उसने कहा—'हम तो नाश्ता कर चुके।'

पढ़ाते हुए निराला जी हमसे कहने लगे—'हमें याद है, हमारी माँ से लेकर स्त्री तक, सभी खूब शिक्षिता थीं। महामाया या मनोहरा जो कुछ कहो, बहुत पढ़ी थीं। उन दिनों हिन्दी में अनूदित सभी पुराणों को वे खूब पढ़ें थीं। खुशरूपुर में तीन बक्सें किताबों से बिल्कुल भरी थीं। तुमने सारंगा-सदाबृज, तोता-मैना, बीरबल, प्रेमबत्तीसी आदि न पढ़ी होंगी ? वे सब किताबें उनमें थीं।' इन सबकी पुष्टि के लिए रामकृपाल नाविक से पूछा।

फिर कहने लगे—'पचीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था में ही बड़ा Disastrous end (दुखद अन्त) हुआ। हमसे किस तरह वे बिछोह कर गईं, मैं आज तक न समझ सका।'

'...हम जब कलकत्ता में थे, तो सुना करते थे—'Females soften the language and males vulgarize it.' (स्त्रियाँ भाषा को लचीली बनाती हैं और पुरुष उसे विकृत करते हैं।) तुम उच्चारण करते-करते बाद में

कुछ दूसरा ही उच्चारण करने लगने हो। जैसे हम Natural को नैचरल तथा नचरल दोनों प्रकार से उच्चारण करते हैं।' फिर निम्नांकित श्लोक यह कह कर लिखाया कि इसे याद रखना—

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥

मनु का बनाया हुआ एक नॉर्म है। अतः श्रद्धा कभी न भूलो। बसंत पंचमी में सरस्वती की पूजा करनी चाहिए। ये ही Intelligence (बुद्धि) के लिये सर्वोत्तम घी हैं।'

'...With diligence and honesty you work.' (तुम परिश्रम और ईमानदारी से कार्य करो।) फिर कहा—'जब कलकत्ते में थे, तो 'कृष्णार्जुन नाटक' चल रहा था। 'सहस्र-रजनी' भी पार कर गया हो; क्योंकि तीन सौ रात्रि के बाद हम शिवपूजन के साथ गए थे।'

भारत में तो कलाकारों को दो-तीन आने रोज़ भी नहीं मिलते

दिनांक १२-२-५४ को प्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर अपनी पार्टी सहित, दो बजे, निराला जी के दर्शनार्थ आए। कुछ देर जमकर पंडित जी से बातचीत हुई। कुछ चित्र भी लिए गए।

अगले दिन प्रातःकाल पहुँचते ही निराला जी ने शिवगोपाल (डॉ०) को इसकी सूचना दी, तो उसने प्रश्न किया—'पंडित जी! कुछ लोग कहते हैं पृथ्वीराज बुड्ढा हो गया; फिर भी बहुत चुस्त है?'

निराला जी ने उत्तर दिया—'जी, नहीं! अभी ४८-५०।का भरा-पूरा जवान है। वजन और ऊँचाई में हमसे ज़्यादा। दो सौ अड़तालिस पौंड वज़न है उसका।'

कुछ क्षण रुककर फिर बोले—'वह अपनी प्रतिदिन की आय तीन सौ रुपये बताता था, किन्तु भारतवर्ष में तो कलाकारों को दो-तीन आने रोज भी नहीं मिलते; बस, उसकी यही बात हमारी समझ में नहीं आई?'

उच्च भावों की अभिव्यक्ति के लिए

बातचीत करते-करते एक दिन मैंने पंडित जी से पूछा—'पंडित जी ! आपकी रचनाएँ बहुत क्लिष्ट हैं ?'

निराला जी ने कहा—'तुलसीदास जी की विनय-पत्रिका Masterpiece (सर्वोत्कृष्ट) होते हुए भी जनप्रिय एवं सरल इसलिए है कि भाषा क्लिष्ट होते हुए भी भावों में बड़ी गम्भीरता है; किन्तु हम लोग सरल लिखते हैं (भाषा), जिसके कारण प्रायः भाव स्पष्ट नहीं हो पाते । इसी कारण लोग कविता को, क्लिष्ट कहते हैं; किन्तु बात बिल्कुल इसकी उल्टी है; उच्चभावों की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप भाषा भी होनी चाहिए ।'

पुस्तकें—विद्वत्ता-परख की कसौटी

दिनांक २६-१२-५२ की बात है । निराला जी सर घुटाए घूम रहे थे । दुपल्ली टोपी तथा कुर्ते की बात की । फिर टोपी पहिन कर दिखाई और प्रश्न किया—'कलकत्ते से लौटने के बाद तुम्हें कैसा लगता है ? अस्वस्थ तो नहीं हो ?'

शिवगोपाल ने कहा—'नहीं ! आप को कैसा लगता है ?'

पंडित जी चट से बोले—'कोई अन्तर नहीं । जैसे वहाँ, तैसे यहाँ । हाँ, कुछ शराब ज़्यादा पी रहा हूँ ।...एक दो दिन बाद यह सब बन्द करके 'आराधना' के लिए दस-बारह गीत पूरे करने हैं । इसके पश्चात् डा० जगदीश गुप्त के के साथ लखनऊ विश्व-विद्यालय के पी० एच० डी० के एक विद्यार्थी से बात करते हुए उसकी 'थीसिस' का विषय पूछा । फिर बात चली तो डा० राधाकमल मुकर्जी के बारे में पूछने लगे—'क्या वे अंग्रेजी में लेक्चर देते हैं ? तुम्हारी राय क्या है, वे कैसा पढ़ाते हैं ? उनके सम्पर्क में भी आए हो ?' फिर कहा—'किसी व्यक्ति की विद्वत्ता-परख उसकी पुस्तकों से हो जाती है ।'

डॉ० जगदीश गुप्त ने कलकत्ता से सकुशल लौटने की बात छेड़ी तो निराला जी ने उतर दिया—'तुम तो चले नहीं; रामकुमार भी न था। आधा Genius (प्रतिभा) तो यहीं रह गया था !'

आज का मछली-पकड़ साहित्य

कोर्स की पुस्तकों की बात चलने पर, पंडित जी बड़े लहज़े से कहने लगे—'वाह रे अहमकपन ! आज का मछली पकड़ साहित्य भी बड़े मज़े का है ! मान लिया कि हमने नवीं कक्षा की एक Text book (पाठ्य-पुस्तक) तैयार कर दी और तैंतीस करोड़ में से यदि एक करोड़ भी पढ़ने वाले हैं, तो कितनी आमदनी होगी ? हम भी अब रुपये बनाएँगे ? लेकिन नहीं, हमने तो अपनी स्पीच में यही लड़कों से कहा कि ऐसी शिक्षा से क्या लाभ, जिससे कि हमें पूर्व-ज्ञान प्राप्त न हो और हम आत्मनिर्भर न हो सकें ? मौलिकता का हम आभास नहीं दे सकते, तो हमारी शिक्षा, चाहे वह विश्वविद्यालय की ही क्यों न हो, वृथा है ?'

मैं किसी को तकलीफ नहीं देना चाहता

१५ दिसम्बर १९५३ को जयगोपाल ने पंडित जी से पूछा—'गुरू जी ! लोगो को शिकायत है कि आप उनके समारोह में सम्मिलित नहीं होते ?'

पंडित जी ने उत्तर दिया—'मैं किसी को तकलीफ नहीं देना चाहता। मैं स्वाभाविक पुरुष हूँ; किन्तु चेयर के मै एक हज़ार रुपए लेता हूँ, क्योंकि सब लोग साधारण आदमी के नाते नहीं, कवि के नाते मुझे बुलाते हैं।' कुछ देर रुककर फिर बोले—'फिर जब लोग जानते हैं कि मैं Highly paid personality (अधिक पारिश्रमिक लेने वाला) हूँ, तो मुझे कवि की तरह बुलाते ही क्यों हैं ? पहले भी मैं एक Sitting (आयोजन) के डेढ़-दो सौ लेता था।'

आपको तो पैसों की फिक्र नहीं

दिनांक १-१२-५३ को अजमेर मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय निराला जी से मिलने आए। आते ही निराला जी के चरण-स्पर्श कर जमीन पर बैठ गए और निराला जी के बार-बार आग्रह करने पर भी वे उठकर चौकी पर नहीं बैठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—'यह पहिला अवसर है, जब आप के दर्शन कर के कृतार्थ हुआ हूँ; इसके पूर्व आपके साहित्य का अध्ययन करता था।'

तुरन्त बात का रुख पलटकर निराला जी ने कहा—'जहाँ तक आपके साहित्य का सम्बन्ध है, मैं उसकी सराहना करता हूँ; किन्तु चीफ़-मिनिस्टर को तो मैं बिल्कुल नहीं मानता।'

इसके बाद जयपुर में निराला-अभिनन्दन की बात चली, तो निराला जी ने कहा—'कलकत्ते के समारोह में हमारे दो हज़ार रुपये नकद पास से खर्च हो गए। मिला-जुला कुछ नहीं।'

हरिभाऊ जी ने कहा—'आप तो पैसों की फ़िक्र नहीं करते ?'

निराला जी ने कुछ तीखे-पन से कहा—'किन्तु अपमान तो न हो।...'

निराला की रॉयल्टी का हिसाब कैसा

एक दिन बातचीत के सिलसिले में एक ख्यातिप्राप्त साहित्यकार ने निराला जी से कहा—'मैंने अपनी कार केवल एक नाटक की रॉयल्टी से खरीद ली थी। आप की इतनी पुस्तकें हैं, उनकी रायल्टी को खाकर दूसरे लोग क्यों मोटे हों ?'

पंडित जी ने तेज़ी से जवाब दिया—'निराला की रॉयल्टी का हिसाब कैसा ? बात तो हमें इस Point of view (दृष्टिकोण) से करनी है कि हमारी Intelligence (बुद्धि) का किस प्रकार से लोग आदर कर रहे हैं ? वह समाज को प्रभावित कर रहा है या नहीं ?'

इस उत्तर को सुन कर वे सज्जन एक दम चुप हो गए; फिर आगे कुछ कहने की उनकी हिम्मत न हुई।

हमें लिखना कुछ नहीं, अब तो देखना और समझना है

दिनांक १५-१०-५३ को सायंकाल साढ़े पाँच बजे निराला जी के यहाँ जयगोपाल-शिवगोपाल पहुँचे। निराला जी बनियान-कुर्त्ता पहिने, दो लुँगियाँ लपेटे पड़े थे। बुखार के कारण बुरी तरह काँप रहे थे। ओढ़ी हुई लुँगियों से शरीर ढकने लगे; क्योंकि नंगे होकर उन्होंने लुँगी ओढ़ ली थी।

उठते ही उन्होंने कहा—'देवी जी के पास जाओ। देखो सरकारी रुपया आया कि नहीं। यदि आया हो तो एक अच्छा भारी कम्बल उन से रुपये लेकर खरीद लाना। हमें जाड़ा लगता है। न ओढ़ने के कारण ही जुकाम से सर्दी हो गई है।' वे दोनों विस्फारित नेत्र, वाक् रहित रह गए। तुरन्त महादेवी जी के यहाँ गए। पता चला कि दशहरे की छुट्टियों में रामगढ़ (नैनीताल) गई हैं, छब्बीस को आएँगी।

अगले दिन प्रातःकाल जब वे पहुँचे तो कुछ तबियत अच्छी थी। निराला जी बैठे अखबार पढ़ रहे थे। चर्चिल को नोबिल पुरस्कार मिलने की बात चली, तो निराला जी ने कहा—'हिन्दी तो कोई भाषा ही नहीं, इसमें पुरस्कार कहाँ? हमने तो इसी Intelligentsia (बुद्धिजीवी) के पीछे इतना भोगा और आज भी कष्ट पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। तुम लोग कल देवी जी के यहाँ गए?'

उन्होंने उत्तर दिया—'हाँ! किन्तु वे नैनीताल गई हैं।'

'क्यों? जाड़े में वहाँ कैसा जाना? फिर उनको कुछ रुपया दे जाना चाहिए था!'

निराला जी ने धीरे-धीरे स्वतः कहा। फिर पूछा—'चर्चिल को कितना पुरस्कार मिला?'

'बारह हजार पौंड से अधिक था। साथ में दस औंस सोने के मेडल भी।' शिवगोपाल ने उत्तर दिया।

'चर्चिल ने Politics (राजनीति) में बहुत लिखा; कुल तीस किताबे कही जाती हैं और उनके द्वारा अर्जित सम्पत्ति के बारे में तो हमने सुना था, पाँच-छः हजार रुपये सालाना उसे मिलता है !'

जयगोपाल के यह पूछने पर —'पंडित जी ! बहुत दिन हो गए ; आप भी कुछ नया लिखिए !' निराला जी ने कहा—'हमें लिखना कुछ नहीं, अब तो देखना और समझना है ?...'

वो हमारी हिन्दी की तारीफ कर रहे थे

सुबह-सुबह पंडित जी के यहाँ जा पहुँचे। रविवार का दिन था। निराला जी आज कुछ खिन्न से नजर आ रहे थे। चरण स्पर्श कर बैठते ही बोल पड़े—'कल एक सज्जन आए थे। हमारी हिन्दी की बहुत प्रशंसा कर रहे थे। पर हम कहना यह चाहते हैं कि वे कौन सी नई चीज कह रहे थे। उसमें तो हम हैं ही।······हमसे अंग्रेजी बोलना था। एक-एक शब्द पर ज़ोर दे देकर अंग्रेजी बोलता था, लेकिन उसे यह पता नहीं कि लखनऊ हम रामविलास शर्मा को डी० फिल्० तक अंग्रेजी पढ़ाते रहे।······हमने उससे कह दिया— My dogs bark even better English than you pronounce!'
(मेरे कुत्ते भी तुमसे अच्छी अंग्रेजी भौंकते हैं।)

बाद में कारण ज्ञात हुआ कि वह सज्जन पंडित जी से बात भी करते जा रहे थे और अंग्रेजी में अपने साथी से बीच-बीच में कुछ उल्टी-सीधी बातें भी करते जा रहे थे। तभी भुवनाथ चतुर्वेदी आ गए। पंडित जी ने उनसे 'मेघदूत' सुनना प्रारम्भ किया और कवि की गर्मी काव्य-श्रवण कर उसी में समा गई।

निराला जी ने फिर लिखना प्रारम्भ कर दिया

दिनांक २९-८-५२ को चन्द्रकान्ता जी के यहाँ बहस चली—'निराला जी

ने पुनः किताब लिखना आरम्भ कर दिया। चार गीत लिखे हैं; पच्चीस तारीख को एक, छब्बीस को तीन। पुस्तक का नाम 'आराधना' है। गीत सुन्दर लिखे हैं।'

निराला जी ने कहा—'आराधना नाम तो इन्हीं (चन्द्रकान्ता जी) का दिया हुआ है। आज छः गीत बनाए।...प्रमोद को पुस्तिका दे दी थी कि कुछ गीत नक़ल करके पत्रिकाओं को भेज दे, जिससे उसके लिए कुछ रुपए मिल जाँय। उसने कल आठ बजे रात तक वह कापी लौटा कर दी। हम एक भी गीत न लिख सके।...हमने लिखना भी इसलिए प्रारम्भ किया कि इसके (प्रमोद के) लिए कुछ प्रबन्ध हो जाए। हम बूढ़े हो गए, क्षेत्र से दूर; परन्तु हमें देखना कि इसका भरण-पोषण करने में हम समर्थ होंगे कि नहीं!'

देखो, चंदू! यह अंट-संट न लिखने पाए

'प्रमोद को हम कालिदास और उसके पश्चात् शेक्सपियर पढ़ाना चाहते हैं। वह चतुर है, उम्र को देखते हुए।...देखो, चन्दू! यह अंट-संट न लिखने पाए। जो लिखे जला दो। देखो कि यह बाहर न जाने पाए, घर में कुछ न कुछ पढ़ता ही रहे।...' यह सब निराला जी ने चन्द्रकान्ता जी से तब कहा, जब प्रमोद ने अपनी लिखी कुछ अतुकान्त हिन्दी कविताएँ उन्हें सुनाई थीं।

इतने प्रसिद्ध साहित्यकार अपनी क़लमें क्यों गन्दी कर रहे हैं

दिनांक २३-५-५४ को निराला जी की स्वस्थता-अस्वस्थता के विवाद से सम्बन्धित 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित जोशी जी के वक्तव्य को, आपस में बात करते हुए, हम सब से सुनकर, निराला जी ने बहुत ही चिन्तित स्वर में कहा—'This conrtrovercy is rot...(यह विवाद निरर्थक है।......)महादेवी जैसी भद्र महिला को इस प्रकार से सबके सामने पेश होने की कोई आवश्यकता न थी। जोशी जी क्या कहना चाहते हैं? हम नहीं

जान पाते कि इतने प्रसिद्ध साहित्यकार भी श्रपनी क़लमें क्यों गन्दी कर रहे हैं ? ...'

श्रागे फिर कहा—'लड़कपन से ही, बड़े जमादार का लड़का होने के कारण मुझे जमादार होना चाहिए था, पर मैं बन गया साहित्यकार; इसलिए मेरी प्रतिभा से लोग ऐसे डरे कि मेरा विरोध ही करते रहे...लड़कपन से श्राज तक मैं कई प्रकार के जीवन बिता चुका हूँ। श्राप लोग जो बनारसीदास चतुर्वेदी की बात करते हैं, जिस समय वे मुझसे मिले, वह मेरा साहित्यिक जीवन था। 'मतवाला' का सम्पादन चल रहा था। श्राज तो मै कुछ दूसरा ही हूँ...।'

श्रापने भी तो लिखा है

एक दिन सायंकाल के समय प्रयाग विश्वविद्यालय से हाल ही में पी-एच०-डी० की डिग्री प्राप्त करने वाले एक सज्जन निराला जी के दर्शनार्थ श्राए। जब शिवगोपाल पहुँचा तो निराला जी ने उसका परिचय दिया श्रौर कहा—इन से श्राप बात करें। हिन्दी में ये भी कुछ दख़ल रखते हैं।' फिर मुझसे पूछा—'श्रच्छा, बताश्रो—तुलसीदास का रामचरितमानस श्रच्छा लगा या शेक्सपियर के वर्क्स (रचनाएँ) या कालिदास के संस्कृत वर्क्स (रचनाएँ) ?'

मैं उत्तर देने ही वाला था कि फिर कहा—'मैंने तुलसीदास के सम्बन्ध में श्रपनी सम्मति दी है; तो तुम सेकेन्ड (श्रनुमोदन) करते हो ?...तुलसीदास को Supercede करने वाला (मात देने वाला) कोई नहीं, यद्यपि रविबाबू विश्व-कवि हैं श्रौर कालिदास को छोड़कर निस्संदेह वें सर्वोपरि हैं।'

वे सज्जन बोले—'तो कालिदास को श्रलग क्यों करते हैं ?'

'इसलिए कि कालिदास को वह श्रपना गुरू मानता है।' पंडित जी ने कहा—'उसी को Follow (श्रनुसरण) करता है।'

वे सज्जन फिर बोले—'श्रापने भी तो लिखा है ?'

'Any how we got a first class without writing an epic.' (हम कोई महाकाव्य बिना लिखे ही, किसी तरह, पहिली श्रेणी पा गये।) पंडित जी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

रुपये के लिए ऐसी Meanness (कमीनापन) नहीं करनी चाहिए

दिनांक १७-४-५४ को श्री गंगाप्रसाद पाडे निराला जी से मिलने आए। निराला जी के गीत—'बौरे आम कि भौंरे बोले, प्राण कि गात पात क खोले।' की प्रशंसा करते हुए, उन्होंने गीत के उत्तरार्द्ध का अर्थ पूछा और कहा—'यह गीत कल्पना, राष्ट्रवाणी, हिन्दुस्तान, अमृत-पत्रिका, आदि बहुत जगह छपा है। पन्त जी इसकी बड़ी तारीफ कर रहे थ। कह रहे थे कि कोई निराला जी को पागल कहे, कोई कुछ कहे; किन्तु वे लिखते सुन्दर हैं।'

फिर 'धर्मयुग' वालों की बात चली, तो पाडे जी ने कहा—'तीन सौ रुपए की वी० पी० पी० द्वारा बारह गीत वहाँ भेज दीजिए; वे छुड़ा लेंगे।'

निराला जी ने रुखाई से उत्तर दिया—'रुपयों के लिए ऐसी Meanness (कमीनापन) नहीं करनी चाहिए।...'

महाकवि निराला ने साहित्यिक क्षेत्र से हाथ समेट लिया

'दृष्टिकोण' (पटना) के सम्पादक श्री शिवचन्द्र शर्मा अपनी पुत्री मंजुश्री के साथ आए, निराला जी को पटना एक अधिवेशन में ले जाने के लिए, जिसका उद्घाटन माननीय शिक्षा मंत्री के कर-कमलों से होगा और मुख्य अतिथि होगे निराला जी। यह असम्भव था कि निराला जी इसके लिये राजी हो जाँय। उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया। अश्रुपूर्ण नेत्रों और दुःखी मन से श्री शिवचन्द्र जी तथा मंजुश्री निराला जी के चरण स्पर्श कर चल दिए।

उनके चले जाने पर पंडित जी ने कहा—'चलो, आफ़त टल गई। हमारा काम बहुत Suffer किया (काम का नुक़सान हुआ) और हम कौन इतने बड़े आदमी हैं, कि हमसे बिहार का काम बन जाएगा। राष्ट्रपति को क्यों नहीं बुला लेते ? हमारा तो संदेश ही पर्याप्त होगा ? फिर हम अकेले नहीं जा सकते थे।... और महाकवि निराला की उपस्थिति आवश्यक भी तो नहीं। उसने तो साहित्यिक क्षेत्र से हाथ समेट लिया है। हम तो दार्शनिक जीवन पार करके अब Vagabond (खाली) हो चुके हैं।'

भागती फिरती थी दुनियाँ

दिनांक २५-२ ५४ को प्रातःकाल ही निराला जी के यहाँ पहुँचे। निराला जी तभी घूमकर आए थे। जयगोपाल ने कहा—'पंडित जी ! हम लोगों ने आपका नाम मंगलाप्रसाद पारितोषिक के लिए प्रस्तावित किया है ?'

पंडित जी ने गौर से हमारे चेहरों को देखा जैसे हमारे मुख पर कुछ खोज रहे हों। फिर कहने लगे—'वह तो बड़े आदमियों को दिया जाता है और मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। फिर हमें जैसे मिले, वैसे न मिले ! क्योंकि एक शेर है—

'भागती-फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम,
हमने हसरत छोड़ दी वह बेकरार आने को है।'

फिर हमने कहा—'पंडित जी नोबिल प्राइज़ भी आपको ही मिलेगा, यदि आप किसी कृति का अंग्रेजी में अनुवाद कर दें ?'

पंडित जी बिगड़ पड़े—'अनुवाद क्यों करदें ? यदि अंग्रेजी में ही लिखना होता, तो कुछ Authentic (प्रामाणिक) चीजें लिखते; किन्तु एक लत पड़ गई है हिन्दी में लिखने की, ताकि सब लोग सुन-समझ सकें। उससे अब हमें जी छुड़ाना है। हम उर्दू भी बोलते हैं, पर उसकी Authenticity (प्रामाणिकता) पर हम गर्व नहीं करते। हमें तो विशेषकर होली और बसंत पर अलग-

अलग पुस्तकें लिखनी हैं, क्योंकि ये दोनों तथा चौमासा भारत के प्रधान अंग हैं। इस प्रकार नई शैली द्वारा कई पुस्तकें हमें अभी भी लिखनी हैं।'

'गीतिका में हमारी दो होलियाँ हैं—'नयनों के डोरे लाल-गुलाल भरे' तथा 'सखी री यह बसंत आया।' भी बसन्त गीत ही हैं। भारती भंडार से प्रकाशित पुस्तकों में 'गीतिका' ही सॉनेट की सर्वश्रेष्ठ कृति है। फिर—Pevious attempts are thought to be more vlauable' (प्रारम्भिक कार्य अधिक महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।)

और मज़े की बात यह कि पुरस्कार की बात को वे इस सफ़ाई से टाल गए कि हम लोगों को यह पता ही नहीं लगा कि कहाँ से बात चली थी और कहाँ आ पहुँची।

सज्जन ने गाने के लिए अनुरोध किया, तो एक गहरी नज़र से उनकी भड़कीली वेषभूषा को निहारते हुए बोले—'गाना, बिना नाज़ साज़ के नहीं गाया जाता।'

× × ×

एक दिन नयी पीढ़ी के एक उभरते हुए कलाकार ने पंडित जी से पूछा—'पंडित जी ! आप शराब कब पीते हैं ?'

निराला जी ने तेजी से उत्तर दिया—'At the time of rest, not at the time of work.' (काम के समय नहीं, आराम के समय।)

× × ×

कवि सम्मेलन के पश्चात् एक सज्जन ने पंडित जी से कहा—'पंडित जी, अपनी कुछ सरल कविताएँ मुझे बता दें ?'

महाकवि ने उत्तर दिया—'जी, यही तो खराबी है कि हम बोलते हैं सरल, किन्तु लिखते हैं कड़ी।'

× × ×

जलपान के समय देहाती जी ने आसपास वालों से पूछा—'क्यों जी, कैसी रही ?' (अपनी कविता के विषय में)

चाय का कप मेज पर रखते हुए निराला जी ने चुटकी ली—'अब तो सभी अतुकान्त लिखने लगे; क्यों देहाती जी ?'

देहाती जी ने इस व्यंग्य को समझा नहीं। प्रत्युत्तर में कह बैठे—'हाँ, पंडित जी ! समझेंगे खाक नहीं, लिखेंगे अतुकान्त।'

सारी कलाकार-मंडली खिलखिलाकर हँस पड़ी। देहाती जी ने एक-दो बार इधर-उधर देखा फिर वे भी हँसने लगे। इस बार एक बार फिर बड़े ज़ोर का

ठहाका लगा और अब निराला जी चुपचाप चाय पी रहे थे, जैसे उन्हें कुछ पता ही न हो कि क्या हो रहा है।

× × ×

प्रयाग में होने वाले दंगल की बात चली। कमलाशंकर ने कहा—'बलिया ने इस बार फिर पंजाब को नीचा दिखाया। बलिया हमेशा जीती पाली में रहा है।'

निराला जी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—'पंजाबियों का कहना है कि भूमि अपनी है, वे उसी में लेटे रहेंगे!'

× × ×

निराला अभिनन्दन समारोह (कलकत्ता) के आयोजन के समाप्त होने पर रात को 'युगान्तर क्लब' द्वारा 'हिन्दुस्तान क्लब' में 'डिनर' का आयोजन किया गया। निराला जी के साथ सभी साहित्यकार वहाँ पहुँच गए। भोजन के उपरान्त श्री नरोत्तमदास शास्त्री ने अपनी रचना सुनाई। फिर निराला जी ने 'यमुना के प्रति!' कविता को बड़ी तन्मयता एवं राग से गाया। अन्य उपस्थित कवियों से अपनी रचनाएँ सुनाने का जब आग्रह किया जाने लगा और वे लोग ज़रा सी 'फार्मेलिटी' बरतने लगे, तो निराला जी चट से बोल उठे—'आप लोग लीपे-पोते पर क्यों फिर-फिर कर रहे हैं? अब किसी की जमने की नहीं।'

निराला अभिनन्दन समारोह की झाँकियाँ !

रुपये नहीं सहयोग बड़ी चीज़ है

दिनांक ६-६-५३ को 'निराला अभिनन्दन समारोह' की बात चलने पर निराला जी ने कहा—'हम एक हज़ार पहिले ले लेंगे, तब जावेंगे, जिस तरह दहेज में क्षत्रिय एवं वैश्य रखा लेते हैं। ब्राह्मणों में तो इतना दहेज नहीं चलता, फिर भी यह नहीं होना कि जिन्दगी भर तो मारे-मारे फिरें हम और 'गेनर' (लाभ पाने वाला) बने कोई और ! क्या हम इतनी भी गुरुघंटई नहीं जानित ? बंगालवालो को लिख दो कि बंगाल के अन्दर Function (समारोह) मना रहे हैं और किसी बंगाली का नाम हमसे नहीं लिया गया। न कोई हमें Representative (प्रतिनिधि) के रूप में ही मिला। हम यह कैसे समझ लें कि राधाकृष्ण नेवटिया और 'बरुआ' सभी कार्य रुपए से ही कर लेंगे ? सहयोग तो बड़ी भारी चीज़ है !'

फिर झुँझलाकर लिखाने लगे—

To,

The Librarian
Bara Bazar Library,
Calcutta.

Dear Sir,

Because of many appositions and negations we are not able to attend the Nirala Abhinandan

Samaroh this time. We are not feeling well also and there are many restrictions of unsatisfactory (silent) answers from the Government.

Pardon, we tried our utmost to please the people of Calcutta during the period of our stay there. With apology.

—NIRALA.

(सेवा में,

पुस्तकालयाध्यक्ष
बड़ा बाजार लाइब्रेरी,
कलकत्ता.

महोदय.

अनेक विरोधों और वर्जनाओं के कारण इस बार हम निराला अभिनन्दन समारोह में उपस्थित हो सकने में असमर्थ हैं। हम स्वस्थ भी नहीं हैं और सरकार के अनेक असंतोषजनक (मूक) उत्तरों के विघ्न भी वर्तमान हैं।

क्षमा कीजिये, हमने वहाँ रहते कलकत्ता के लोगों को प्रसन्न करने की यथाशक्ति चेष्टा की। क्षमायाचना के साथ।

—निराला)

फर लिखाया—

We are not very keen to go there. It may be for Ram Krishan but that does not matter.

—NIRALA.

(हम वहाँ जाने के लिए उत्सुक नहीं हैं। यह रामकृष्ण के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है; पर उससे क्या ? —निराला)

फिर निराला जी ने एक गीत सुनाया, जिसे उनकी पत्नी मनोहरा देवी गातीं थीं—

अपने पिया की मैं अलबेली,
जोवन मेरा फूल चमेली,
काँटा लागे हो देवरवा—
मोसे चला ना जाय ॥
आधी रात को मोको लै आये,
सास-ससुर कछु जान न पाये,
चलत-चलत मोरी पिंडुरी पिरानी,
पैर धरा न जाय ॥

निराला अभिनन्दन समारोह यात्रा

दिनांक १६-६-५३ को दोपहर के एक बजे बरुआ जी कलकत्ते से आए। पंडित जी ने उनका स्वागत किया और अभिनन्दन ग्रन्थ के चित्र इत्यादि देखकर वे चलने की मुद्रा में आ गए। बरुआ जी को प्रातः छः बजे फिर बुलाया।

× × ×

अगले दिन बरुआ जी निश्चित समय पर नहीं आए, जिसके कारण निराला जी उद्विग्न थे और कलकत्ते न जाने की हजार बातें कह रहे थे, किन्तु लगभग दस सवा दस बजे बरुआ जी श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डे सहित आ पहुँचे। पाण्डे जी ने कहा—'तो आप पाँच बजे देवी जी के यहाँ चले आएँ, सब प्रबन्ध ठीक है।'

निराला जी ने देवी जी के घर जाने से इन्कार कर दिया और अपने शिष्यों की ओर इंगित करते हुए कहने लगे—'देखते नहीं हो, ये इतने लोग बैठे हैं! जब तक इन सबके जाने का ठीक इन्तजाम न हो जाए, हम कैसे जा सकते हैं?'

बरुआ जी ने दो सौ रुपये पंडित जी की खाट पर रख दिए। पंडित जी ने अपने चिरंजीव रामकृष्ण को रुपये गिनने का आदेश देते हुए कहा—'जाओ, मार्केटिंग करनी है अन्यथा कलकत्ता में ही हो जायेगी। हमें चादरें

श्रौर लुँगियाँ श्रादि लेनी हैं।' फिर हँसते हुए कहने लगे—'हम साथ में बीस सेर मिठाई ले जाएँगे।'

श्री बरुश्रा ने पंडित जी के कई चित्र लिए श्रौर पाण्डे जी के साथ चले गए। तब जयगोपाल बोल पड़ा—'पंडित जी! बीस सेर मिठाई रहेगी, तो बड़ा मज़ा रहेगा। लेकिन बाँटेगा कौन?'

निराला जी खिलखिलाकर हँस पड़े—'grand (श्रच्छी) नहीं, the grand (बहुत श्रच्छी) feast (दावत) होगी। हम श्रपने हाथ से रास्ते में सबको मिठाई बाँटते चलेंगे।'

× × ×

निराला जी ठीक सात बजे स्टेशन पहुँचे। साथ में चार सेर पेड़े श्रौर कुछ तम्बाकू लिए थे। पेड़े श्रपने शिष्यों को सौंपकर प्लेटफार्म पर घूमने लगे। श्री वाचस्पति पाठक श्रपनी लड़की सहित श्रा गए। कमलाशंकर सपत्नीक, तथा जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र श्रादि जाने वाले सभी सज्जन वहाँ पहुँच चुके थे। महादेवी जी श्रभी तक नहीं श्रायीं थीं। सभी का सामान रिजर्व डिब्बे में लगा दिया गया था।

एक डिब्बे में पाठक जी पुत्री सहित, कमलाशंकर सपत्नीक, जोशी जी श्रादि तथा दूसरे में शिवगोपाल, मदन, रामकृष्ण, केशव, निर्मल जी श्रादि थे। गाड़ी श्राई। निराला जी के स्वागतार्थ श्रनेक महिला विद्यालयों की बालिकाएँ, प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र श्रौर श्रध्यापक, परिमल तथा निराला परिषद् श्रादि श्रनेक साहित्यिक संस्थाश्रों के सदस्य तथा नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति स्टेशन पर उपस्थित थे।

निराला जी पर पुष्प वर्षा हुई। श्रनेकानेक मालाएँ पहिनाई गईं। पंडित जी ने सबकी श्रभ्यर्थना स्वीकार की श्रौर एक छोटा सा वक्तव्य दिया, जिसमें प्रयागवासियों को श्रत्यधिक उन्नति पथ पर श्रग्रसर होने की बात कही थी। निराला जी ने श्राज हस्ताक्षर न करने की श्रपनी प्रतिज्ञा भी छोड़ दी श्रौर श्रनेक श्राटोग्राफ बुक्स पर हस्ताक्षर किए। गाड़ी चल दी श्रौर 'निराला जी की जय!

महाकवि की जय ! ! महाकवि निराला की जय ! ! !' से स्टेशन गूँज उठा। श्री गङ्गाप्रसाद पाण्डे, बरुआ तथा जयगोपाल जी रात्रि भर निराला जी की देखभाल करते रहे। मुग़लसराय तक पंडित जी सो गए। दूसरे डिब्बे में साढ़े बारह बजे तक निराला जी के आत्मज रामकृष्ण जी का संगीत कार्यक्रम चलता रहा। निराला जी का अत्यंत प्रिय गीत...'कितनी बार पुकारा, खोल दे द्वार बेचारा।' अत्यन्त भावुकता एवं तन्मयता से उसी दिन सुनने को मिला। कई स्टेशनों पर तो सुनने वाले यात्रियों की भीड़ एकत्रित हो गई। निराला जी ने चार सेर पेड़े दूसरे डिब्बे में रख दिए थे। वे लोग प्रायः भूख लगने पर उनको ही खाते।

एक मजेदार बात यह थी कि श्री बरुआ रात्रि को बारह बजे तक अन्य लोगों को चाय-पान तथा अन्य अनिवार्य वस्तुओं के लिये पूछते रहे, किन्तु जिस डिब्बे में निराला जी के पुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी थे, उस तक वे पहुँचते ही नहीं थे। अपनी खुशी से, भूल-चूक से या किसी के कहने से, यह तो भगवान् जाने या स्वयं बरुआ जी; लेकिन यह सच है कि हम नहीं जानते। हज़ारीबाग़ पर निराला जी के कहने पर सभी लोगों को चाय-पान कराया गया।

क्रम से स्टेशन निकलते गए। बंगाल की अपूर्व छटा—केले, जूट, धान, तालाब, कमल, नारियल, सुन्दर छप्परवाले गुम्बदनुमा घर—हठात् मन को आकृष्ट करते रहे। हावड़ा पुल दिखाई देने लगा। बिस्तर बँध गए। स्टेशन आया। निराला जी का डिब्बा बीच में था और दूसरा सबसे पीछे। निराला जी के स्वागतार्थ स्टेशन पर अपार जन-समूह उपस्थित था। प्रमोद कात्यायन, जो देवघर से आकर उपस्थित हुआ था, झपटकर निराला जी के डिब्बे में चढ़ गया। लोगों ने मारकर उसे गिरा देना चाहा; परन्तु निराला जी की दृष्टि पड़ते ही उसे बचने का वरदान प्राप्त हो गया।

फूल मालाओं से पंडित जी का गला भर गया। अनेक चित्र खींचे गए। भीड़ उत्तेजित होकर 'निराला जी की जय ! महाकवि की जय ! !' के नारे लगा रही थी। इसी समय निराला जी को एक नारियल भेंट किया गया।

थोड़ी देर बाद भीड़ के बीच में से निराला जी बाहर की ओर बढ़े। निराला जी को तुरन्त कार में बैठाकर झुनझुनवाला के यहाँ (१।३ रोलैंड रोड) ले जाने

का विचार किया गया। कार में बैठकर सर्व प्रथम निराला जी ने बंगाल में बंगला ऑटोग्राफ 'सत्येन' नाम से दिए। फिर तो अंग्रेजी में S बना देते थे। कुछ ही देर में भीड़ अत्यधिक बढ़ गई। अतः शीघ्र कार चलाने का आदेश हुआ और निराला जी गंतव्य स्थान ले जाए गए। अन्य लोग १।४ रोलैंड रोड, जैपुरिया की कोठी पर उतार दिए गए, किन्तु उन्हें यह पता नहीं चला कि निराला जी कहाँ हैं।

Chief guest (मुख्य अतिथि) हूँ

कलकत्ता पहुँचने के दूसरे दिन की बात है कि शाम को निराला जी नगर यात्रा के लिए पैदल ही चल दिए। अनेक स्थान, जिनसे उनका पहिले सम्बन्ध रहा था, दिखाए। फिर शराब खरीदी और आकर उसको पिया। बिगड़ रहे थे कि मांस खाएँगे, किन्तु इन धार्मिक मारवाड़ियों के यहाँ इन वस्तुओं का प्रवेश ही निषिद्ध है, प्रयाग की तो बात ही क्या ?

उपस्थित लोगों की अनिच्छा देखकर बुरी तरह बिगड़ पड़े—'मैं यहीं बैठे-बैठे बकरे की हड्डी चिचोड़ूँगा। देखूँगा कि कोई कैसे रोकेगा ? Chief guest (मुख्य अतिथि) हूँ कोई मज़ाक नहीं ? जो माँगूगा Host (मेज़बान, आतिथेय) को सप्लाई करना पड़ेगा।'

वातावरण बड़ा विचित्र हो गया था। झुनझुनवाला आदि परेशान हो उठे थे। किन्तु पीने के बाद ही 'मूड' बनना प्रारम्भ हुआ। फिर क्या था, हारमोनियम पर अनेकानेक गीत चढ़े और उतरे। बुलन्द आवाज-साक्षात केहरी की सी गूँज उठी। आश्चर्यचकित हो सब देख रहे थे, कि बिना किसी आग्रह के सरस्वतीपुत्र निराला, 'निराला अभिनन्दन समारोह' का चीफ़ गेस्ट, आँखें मूँदे सरस्वती की आराधना में लवलीन था।

अब हमारे हाथ खाली हैं

उसी दिन प्रातःकाल निराला जी ढाई बजे उठे और भैरवी प्रारम्भ की।

स्वर इतना तेज़ तथा लालित्यपूर्ण था कि आसपास के नर-नारी छज्जों पर आकर गीत सुनने लगे।

प्रातः चाय-नाश्ता के बाद निराला जी नौ बजे वेलूरमठ देखने गए। वहाँ उन्होंने अन्य साथियों को दक्षिणेश्वर के दर्शन करने लिए कहा, किन्तु स्वयं दूर ही खड़े रहे। बाद में, चलते समय, भिखारियों को जब तक उनके पास पैसे रहे, जो कुछ भी जेब में निकला, देते रहे। फिर हँसते हुए कहने लगे—'हमारे पास पैसे ही नहीं रहे, अब हमारे हाथ खाली हैं।'

निराला जनता का है

'जैन-भवन' में निराला अभिनन्दन समारोह मनाया जा रहा था। निराला जी तथा उनके सुपुत्र पहली कार में गए थे। तभी दर्शकों ने दर्शनातुर हो धक्के लगाए, यहाँ तक कि आचार्य क्षितिमोहन सेन का चश्मा गिरकर लापता हो गया।

भीड़ इतनी थी कि जैसे ही हॉल में निराला जी ने पदार्पण किया, चीख उठे—'रामकृष्ण कहाँ हैं ? मर गया !......' किन्तु पास ही रामकृष्ण सुरक्षित पहुँच चुके थे। वह बोले—'ठीक हूँ।' हॉल खचाखच भरा था। बालकनी ठसाठस थी।

बाहर वाली सीढ़ी के दरवाजे बन्द कर दिये गए; इसलिए बाहर खड़ी हुई भीड़, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी थे, असंतोष प्रकट कर रही थी। चारों ओर से तेज़ आवाजें आ रही थीं—'निराला जनता का है। इस प्रकार से बन्द स्थान में उनका अभिनन्दन करना अन्यायपूर्ण है...पाँच रुपये का टिकट लगाया गया है। इस अभिनन्दन में बड़ी जालसाज़ी है।'

कुछ देर पूर्व महादेवी जी भी धक्का खाकर ऊपर पहुँच चुकी थीं। अपार भीड़ के धैर्य का अन्त हो गया। दरवाज़ों के शीशे तोड़ने प्रारम्भ हुए। बहुतों के चोट आई, कुछ के सर लहूलुहान हो गए। बालकनी में युवक-युवतियाँ पिसे जा रहे थे।

महादेवी जी, जो अध्यक्षा थीं, विलम्ब से आईं, तो आचार्य क्षितिमोहन सेन जी की देख-रेख में कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

निराला जी के आत्मज श्री रामकृष्ण त्रिपाठी ने 'वर दे वीणा वादिनि' गाकर वन्दना की। फिर बंगाली युवतियों ने 'टैगोर म्यूजिक' का प्रदर्शन किया। रामकृष्ण जी ने 'भारति जय विजय करे' का सस्वर पाठ किया। तब आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपना भाषण प्रारम्भ किया—'हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में निराला का आगमन एक विद्रोही स्वर की सूचना देता है। आरम्भ से आज तक उनके काव्य में गतानुगतिका के प्रति विद्रोह है। पुराने संत कवियों के समान उनमें अपने व्यक्तित्व को पुरुष भाव से व्यक्त करने की तेजस्विता है। यही निराला का प्रधान आकर्षण है।

'साहित्य में, सामाजिक चेतना में, सर्वत्र एक प्रकार की मुक्ति की वे अभिव्यक्ति करते आए हैं। उनकी अनुभूति तीव्र और आवेग वेगवान है। यह स्वच्छन्दता उनके नाम को सार्थक करती है। वस्तुतः निराला के समान स्वच्छन्दता प्रेमी कवि हिन्दी में दूसरा नहीं।

'निराला जी केवल कवि ही नहीं वरन् उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। लगभग दर्जन भर कविता पुस्तकें, आधे दर्जन उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रेखाचित्र, समीक्षाएँ, जीवनियाँ, नाटक, परिचय, टीका, साहित्य-शास्त्र तथा अनुवाद, सब मिलाकर उनका साहित्य अपने आप में एक समग्र साहित्य जैसा है।

'हिन्दी काव्य में नवीन स्वर लाने वाले, उस काल के तरुण कवियों में, निराला प्रमुख कवियों में से एक हैं। प्रसाद जी को काल ने हम से छीन लिया; किन्तु सौभाग्य से निराला, पंत और महादेवी तथा नई धारा के अन्य प्रतिभाशाली कवि हमारे बीच आज भी उपस्थित हैं। ये चारों कवि तात्कालीन इतिवृत्तात्मकता में रस का समावेश करने में समर्थ हुए।

'खड़ीबोली को आज जो समादर मिल रहा है, उसके लिए यह बोली इनकी चिरऋणी रहेगी।

'निराला जी ने काव्य में रहस्य की चिरन्तन वाणी ध्वनित की। उन्होंने प्रमाणित किया कि छंद कविता का प्राण नहीं, उसके रूप को सँवारने का साधन है। इसे लोगों ने 'छायावाद' का नाम दिया, शायद परिहास में; किन्तु उसे नाम चाहे जो भी दिया जाय, इस नवीन उत्थान में एक शक्ति थी, एक ओज था, प्राण थे और अपना एक निजी सौन्दर्य था। उसने सीमा के बंधनों से मुक्त करके असीम की ओर दृष्टि फेरी। हमारे काव्य की वाणी और व्यवहार की भाषा के व्यवधान को दूर किया। हमारी काव्य-शैली की जड़ता को निराला ने कठिन आघात देकर दूर किया। सन्त काव्य के साथ निराला का जगह जगह मेल है। वही फक्कड़पन, वही मस्ती, काव्य में अपने अन्तर की अनुभूतियों का अबाध वर्णन, अज्ञात प्रियतम के मर्म की व्याकुलता, रूढ़ियों के प्रति विप्लवी भाव, विरोध की उपेक्षा और अनन्त का संदेश, उनके काव्य की विशेषताएँ हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी उनकी वाणी भी 'अटपटी वाणी' हो गई है। यह हर्ष का विषय है कि हिन्दी में जिस धारा का उन्होंने प्रवर्तन किया, उसके पूर्णतम विकास को देखने के लिए वे हमारे बीच आज उपस्थित हैं; अपने हाथों लगाए पौधे को वे पनपते और फूलते-फलते देख रहे हैं।'

फिर महादेवी वर्मा ने अपार भीड़ द्वारा होने वाली गड़बड़ी को लक्ष्य करके अनुशासनहीनता पर खेद प्रकट किया। श्री क्षितिमोहन सेन ने आगत बन्धुओं तथा निराला जी का मन्त्रों द्वारा स्वागत किया। स्वागत मन्त्री श्री राधाकृष्ण नेवटिया ने इस अवसर को कलकत्ता नगर का अहोभाग्य बताया। फिर राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, मोहनलाल गौतम, सुधांशु, कमलापति त्रिपाठी, पट्टाभी सीतारमैया आदि के शुभ संदेश पढ़े गए।

महादेवी जी का आग्रह था कि अभिनन्दन पहिले कर दिया जाय, किन्तु इसके पूर्व ही निराला जी माइक पर आए और कहने लगे—'आप लोग धीरे-धीरे बाहर निकल जाँय।' फिर कहा—'जिस देश मे चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी सरकार का पता न चले, उस देश के बच्चों की शिक्षा क्या होगी? उस देश के नवयुवकों में अनुशासन कहाँ से आयेगा?'

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री से महाकवि ने रचना पढ़ने के लिए कहा। उन्होंने 'यमुना के प्रति' कविता की कुछ पंक्तियाँ ही पढ़ी होंगी, कि निराला जी उन्हें रोककर, स्वयं माइक पर आ गए और 'भर देते हो बार-बार करुणा से' सुनाया।

बालकनी में बच्चे पिसे जा रहे थे। अतः शान्ति असम्भव थी। निराला जी ने 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' अत्यंत ओजस्वी भाषा में पढ़ना प्रारम्भ किया, किन्तु फिर भी शान्ति न हुई।

माईक छोड़,मंच पर आगे बढ़, ऐसे ही उच्च स्वर से सुनाना प्रारम्भ किया, किन्तु फिर भी कुछ न हुआ। हतोत्साह हो निराला जी ने अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित करने की जल्दी की। अभिनन्दन ग्रन्थ, हाथ में लेकर अपने सुपुत्र को सौंप दिया। फिर तो फूल मालाओं से गला भर गया। उनका दम घुटने लगा। मुँह मालाओं से ढक गया। बरुआ जी चित्र लेने के इच्छुक थे, किन्तु निराला जी तुरन्त 'डिस्पर्स' कहकर अपार भीड़ में कूद पड़े। न जूते पहिने, न कुछ हाथ में लिया। सब कुछ वहीं छोड़-छाड़कर मोटर में बैठकर घर पहुँचे। इस प्रकार के अशान्त वातावरण में अभिनन्दन होते हुए निराला जी ने कहा था—'आप लोग Open meeting (साधारण सभा), जो Public meeting (सार्वजनिक सभा) हो, उसका आयोजन करें। मैं भाषण एवं कविता-पाठ की वर्षा करूँगा।'

अभिनन्दन हॉल के बाहर खड़ी भीड़ अभी भी चिल्ला रही थी—'निराला जनता का है। इस प्रकार के बन्द स्थान में उनका अभिनन्दन करना अन्यायपूर्ण। फिर पाँच रुपये का टिकट लगाया गया है। इस अभिनन्दन में बड़ी जालसाजी है।...इस प्रकार बन्द स्थान में निराला का अभिनन्दन अन्यायपूर्ण है। निराला जनता का है। महाकवि जनता का है, कुछ इने-गिने सेठ-साहूकारों का नहीं......।'

●

निराला-मिशन और प्रधान-मन्त्री नेहरू

सोमवार दिनांक १६-१०-५३ को दैनिक पत्रों में नेहरू-निराला मिलन की बात प्रकाशित हुई। सायंकाल नेहरू जी के यहाँ से एक खबर भी आई कि 'निराला -मिलन' का उनका समय १२ बजे दोपहर है। आठ आदमी साथ में आकर मिल लें। यह खबर आयुर्वेद-पंचानन पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल द्वारा मिली थी।

डॉ० उदयनारायण तिवारी के यहाँ श्री जयगोपाल शिवगोपाल पहुँचे, तो उन्होंने कल नेहरू जी से मिलने जाने की स्वीकृति दी और कहा—'जहाँ तक हो हमें निराला जी को साथ नहीं ले चलना चाहिए।'

साढ़े आठ बजे के लगभग वे दोनों निराला जी के घर पहुँचे। पंडित जी से बनियान साफ़ करने के लिए माँगी तो उन्होंने पूछा—'क्यों?'

'कल नेहरू जी ने आप को मिलने के लिए अपने यहाँ आमंत्रित किया है।' दोनो एक साथ बोल उठे।

शासनाधिकारियों से निराला जी को सदा ही चिढ़ रही है। वे खाना छोड़कर उठ खड़े हुए—'कौन! पंडित जवाहरलाल!......मैं किसी से क्यों मिलूँ?... मैं जवाहरलाल को सन् '३६ के कांग्रेस सेशन में देख चुका हूँ; सुन चुका हूँ। फिर यहीं प्रयाग में डेढ़ घंटे तक बहस भी कर चुका हूँ!......मुझको तुम लोग क्या समझते हो? मैं Autobiography (आत्मकथा) लिखने वाले नेहरू को भली भाँति जानता-पहचानता हूँ; किन्तु आज तक तुम हमारे स्वभाव

को पहिचान नहीं पाए। जान पड़ता है, तुम लोग भी विरुद्ध दस्ते में मिल गए हो। शिष्य नहीं, शत्रु बन गये हो ?......यदि नेहरू हमें बुलाता, तो अपने फोटो में हस्ताक्षर करके हमारे पास भिजवाता। जब यहां (दारागज) हमारे सिर पर चढ़कर आया था, तब तो हमसे नहीं मिला।'

और उसी मुद्रा में बड़बड़ाते हुए बगल में वैद्य जी के यहाँ चले गए। वहाँ भी कोई पूछ बैठा—'सुना है पंडित जी ! कल आप नेहरू जी से मिलेंगे ?'

फिर क्या था, पंडित जी ने न जाने कितनी बातें कहीं, सुनाईं। कुछ देर बाद निराला जी नम्र हुए और अपनी बनियान साफ़ करने के लिए दे दी।

× × ×

मंगलवार दिनांक २०-१०-५३ को प्रातःकाल डॉ० उदयनारायण तिवारी ने फिर इच्छा प्रकट की कि निराला जी को पंडित जी से नहीं मिलाना चाहिए और अपने स्थान पर ही यह सलाह भी दी कि नेहरू जी को 'निराला अभिनन्दन ग्रंथ', जो कलकत्ते में मिला था, की एक प्रति समर्पित की जाय। साथ ही महाकवि की कुछ अन्य पुस्तकें भी। इसके लिए एक पत्र भी उन्होंने श्री वाचस्पति पाठक, अध्यक्ष, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस के नाम लिख दिया। डॉक्टर तिवारी इस मत के पक्षपाती थे कि वहाँ जाकर सभी लोग न बोलें; किन्तु कुछ ही लोग, पहले से ही नियत विषय पर, वहाँ बातचीत करें।

निराला जी के यहाँ साढ़े आठ बजे जब जयगोपाल-शिवगोपाल पहुँचे तो निराला जी ने कहा—'हम नेहरू को काफी देख चुके हैं। जब उसने अपनी लड़की का नाम 'इन्दिरा' रक्खा, तभी हम समझ गए ! हम तो वह आदमी हैं, जो Religious Knot (धार्मिक दुराग्रह) को मानते हैं।'

फिर क्रोध से बोले—'मैं कहता हूँ—'I am no...why he should meet me ? (मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, वे मुझसे क्यों मिलेंगे।) न मैं नेहरू से मिलूँगा, न नेहरू मुझसे। हमें क्या आवश्यकता ?......फिर जाकर श्रीनाथ सिंह से पूछो कि वह क्या छापेगा ? जाकर तिवारी दुल्लीसिंह से पूछो कि जाना चाहिए या नहीं ? हम किसी के पास क्यों जाँय ? हमने जिन्दगी भर मार खाई है, पर कभी झुके नहीं। यदि आप लोग चाहते हों, कि वहीं नेहरू...........

तो बात दूसरी है। मिलने पर ज़िन्दगी के प्रश्न खड़े हो जाएँगे और हम वह आदमी नहीं कि दब जाएँ ? सन् '३६, '४२ काफी हैं नेहरू को समझने-समझाने के लिए ?......'

बात यह हुई थी कि कुछ देर पहले ही किसी ने नेहरू एवं निराला-मिलन की बात कह दी थी। इसीलिए निराला जी ने विशेष सतर्कता से इस प्रश्न पर सभी बातें कीं और अन्ततः जाने से इन्कार कर दिया।

उसी दिन ११-५० पर पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी, श्रीकृष्णदास, श्री विद्याभास्कर तथा श्री जयगोपाल शिवगोपाल मिश्र आदि 'आनन्द-भवन' पहुँच गए। उस समय 'स्वराज्य-भवन' में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की बैठक हो रही थी। बाद में १२-५० पर डॉ० रामकुमार वर्मा भी जा पहुँचे।

जैसे ही बैठक समाप्त हुई, नेहरू जी सबसे परिचित हुए, हाथ मिलाया और भीतर कमरे में ले जाकर 'निराला-मिशन' के सदस्यों से बातचीत प्रारम्भ की।

वैद्यराज शुक्ल जी ने 'निराला-परिषद्' के उद्देश्य बताते हुए, निराला जी की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया और बताया कि जो कुछ भी रुपया उनको मिलता है, उसे दान दे देते हैं। फल यह होता है कि बाद में कष्ट उठाते हैं।

नेहरू जी ने कहा—'आप लोगों को चाहिए कि उन्हें ऐसे व्यक्तियों के के साथ रक्खें, जो वस्तुतः उन पर श्रद्धा रखते हों और जो ख़र्च हो, उसका आप लोग भुगतान करें।'

इस पर शुक्ल जी ने कहा—'रॉयल्टी का रुपया आता है, किन्तु उसका ठीक हिसाब नहीं मिलता। कुछ प्रकाशक रॉयल्टी देते ही नहीं।'

नेहरू जी ने कहा—'आप लोगों को पत्रों द्वारा Wide publicity (व्यापक प्रचार) करना चाहिए, जिससे प्रकाशक लोग उनकी रॉयल्टी का उचित

हिसाब और रुपया हर साल भेज दिया करें। आप परिषद् द्वारा या अन्य साधनों से उन्हें आगाह कर सकते हैं और ६५ किताबों से, जैसा आप बताते हैं, उनके लिये काफ़ी रुपया आ सकता है।'

उसी बीच जयगोपाल ने कहा—'रॉयल्टी से उन्हें ४,०००) मिलते हैं, पर प्रकाशक लोग नहीं देते। कलकत्ते में भी २,५००) उन्हें उपचार के निमित्त दिए गए और यह कोष बढ़ाया जा......'

नेहरू जी ने बात काटकर उत्तर दिया—'आप लोग हिन्दी वाले सोचते तो हैं बहुत ऊँचा; किन्तु Practical (व्यवाहारिक) मामलों में बहुत पीछे हैं। एक तरफ़ आप लोग यह भी कहते है कि निराला जी के पास रुपये की कमी नहीं और दूसरी ओर उनकी आर्थिक दशा भी खराब बताते हैं। यह तो हमारी समझ में नहीं आता कि रुपये होते कोई कैसे भूखों मर सकता है ? आप हमें बताइए कि आपकी परिषद् ने अभी तक क्या किया और निराला जी की कौन-सी ठोस सेवा की ? आप लोग चाहते हैं कि उनका जिम्मा सरकार ले ले; किन्तु उनके लिए हम कोई नवीन विधान तो नहीं बना सकते ! आप लोग उनकी पुस्तकों से होने वाली Income (आय) तथा उनके Monthly Expenses (मासिक ख़र्च) की एक सूची बनाइए और Monthly Expenses (मासिक ख़र्च) परिषद् में पेश करके dues pay-off (कर्ज़ अदा) कर दीजिए।'

डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा—'निराला जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। हम चाहते हैं कि काज़ी नज़रूल की भाँति हम लोग उन्हें भी विलायत भेजें, जहाँ उनका उचित उपचार हो सके। इस दिशा में सरकार भी यथा-सम्भव हमारी सहायता करे।'

नेहरू जी ने उत्तर दिया—'जहाँ तक पता है, सरकार काज़ी नज़रूल को १००) प्रति मास देती है और कुछ महीने पहिले ही वे विलायत भेजे गए हैं। आप लोगों का यह प्रश्न हमें जँचता है और इसमें सरकार आपकी पूरी-पूरी सहायता करेगी। हाँ, निराला जी को विलायत भेजने का मै पक्षपाती नहीं,

क्योंकि वहाँ Surgical Treatment (शल्य चिकित्सा) ही अच्छा होता है और रोगी पर Enviornment (वातावरण) का विशेष प्रभाव पड़ता है। वहाँ पर यहाँ के आदमी के स्वभाव आदि का पता लगाना, डाक्टरों को कठिन हो जाता है और इसीलिए उचित इलाज में वे असफल रहते हैं। हमें तो निराला जी का इलाज अपने ६ देश में कराना होगा और कराना चाहिए। इसके लिए बिहार स्थित राँची बेहतर रहेगा।'

'आप लोग दो बातें मुझे लिखकर दीजिए। एक तो निराला जी की कृतियाँ एवं उनकी ख्याति। दूसरे उनके स्वास्थ्य के विषय में। दोनों के बारे में अलग-अलग लिखिएगा, जिससे कि देहली जाकर, डाक्टरों से पूछ-ताछ कर, बता सकूँ।'

बाद में यह पूछने पर—'हम लोग सभी प्रबन्ध करेंगे और अगर आपकी आवश्यकता पड़ी तो.........?'

'मैं भरसक प्रयत्न करूँगा।' नेहरू जी ने कहा—'यह प्रश्न मुझे उचित जान पड़ा। राँची की प्रत्येक सुविधा का पता लगाऊँगा। सरकार से उचित आर्थिक सहायता भी दिलाऊँगा।'

पुनः इस प्रश्न पर कि 'निराला जी की कृतियों का राष्ट्रीयकरण हो।' नेहरू जी जयगोपाल पर बिगड़ पड़े।

भावावेश में जयगोपाल ने कहा—'हम लोग, सिवा इसके कि जब बीमार हों, दवा दें, जब भूखे हों, खाने को दें, और क्या कर सकते हैं?'

नेहरू जी ने उत्तर दिया—'जब आप लोग इतने श्रद्धालु हैं, तो उनके रहने का प्रबन्ध भी आपको ही करना होगा। जहाँ तक प्रकाशन की बात है, केन्द्रीय सरकार ने इस प्रकार के प्रकाशन नहीं अपनाए। हाँ, प्रान्तीय सरकार इस कार्य में आपकी मदद कर सकती है। रॉयल्टी के लिए भी केन्द्रीय सरकार कोई नया कानून नहीं बना सकती।'

बाद में नेहरू जी ने कहा—'आप लोग निराला जी की कृतियों के प्रकाशक तथा उनसे रॉयल्टी मिलती है अथवा नहीं, उनकी दैनिक दिनचर्या,

उनकी मानसिक स्थिति आदि के विषय में शीघ्रातिशीघ्र रिपोर्ट भेजें, जिससे उचित कार्यवाही की जा सके।'

कुछ देर बाद नेहरू जी ने कहा—'पिछली बार दारागंज में मैंने सुना कि निराला जी मिठाई और चाय लेकर मुझसे मिलने आए; किन्तु सिपाहियों से ही उनकी ठन गई और चाय का प्याला, मिठाई का दोना, वहीं फेंककर वे लौट गए!'

उत्तर में शुक्ल जी ने कहा—'कलकत्ता अभिनन्दन समारोह में जब निराला जी गए, तो उनका मस्तिष्क बिल्कुल ठीक था। कभी-कभी तो बहुत स्वस्थ हो जाता है।'

और तभी प्रधान-मन्त्री नेहरू ने व्यंग्य करते हुए ठहाका मारा—'हाँ! कभी-कभी तो सभी का दिमाग़ ठीक हो जाता है।'

× × ×

'निराला-मिशन' और प्रधान मन्त्री नेहरू की इस भेंट को लगभग साढ़े-तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। नेहरू जी भी चुप रहे और नेहरू सरकार भी। निराला-परिषद् ने भी अपनी मौन-साधना भंग न की। नेहरू और नेहरू सरकार ने कुछ नहीं किया और न निराला-मिशन और निराला परिषद् के सदस्यों ने ही; किन्तु यह बात हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं और न विचारणीय ही। महाकवि के लिए कभी किसी ने कोई महत्वपूर्ण कार्य किया हो इसका हमें ज्ञान नहीं। इसलिए उनके लिए कुछ करने न करने वाली बात तुच्छ है, विस्मरणयोग्य। विचारणीय और महत्वपूर्ण यदि कुछ है, तो वह है प्रधान-मन्त्री नेहरू का यह व्यंग्य करते हुये ठहाका मारना—'हाँ! कभी-कभी तो सभी का दिमाग़ ठीक हो जाता है।' जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के आठ वर्ष बाद भी हमारे मान्य राजपुरुषों की मानसिक-हीनता, ग़ुलामी और खोखलेपन का परिचायक है कि वे अपनी मातृ-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कलाकार को हिक़ारतभरी निग़ाहों से देखते हैं; गोष्ठियों और मजलिसों में खुलकर उनका मज़ाक उड़ाते हैं।

हमारे राजनैतिक पुरुषों अथवा शासनाधिकारियों द्वारा साहित्यकारों के प्रति की गई उनकी उपेक्षा के नमूने यत्र-तत्र सर्वत्र सांस्कृतिक एवं साहित्यिक

सम्मेलनों में, जब कोई राजपुरुष बुला लिया जाता है अथवा स्वयं आ पहुँचता है, सरलता से दृष्टिगोचर हो जाते हैं। इस प्रकार की हीन-प्रवृत्ति हमारे राजपुरुषों की बुद्धि की अपरिपक्वता तथा मानसिक ग़ुलामी का जीता-जागता उदाहरण है, जो हमारे देश, जाति तथा समाज के लिए एक लज्जा की बात है।

यह प्रश्न कोई साधारण प्रश्न नहीं; प्रधान-मन्त्री नेहरू और महाकवि निराला का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं; एक राष्ट्रीय प्रश्न है—जिसको एक किनारे छोड़कर चुप बैठे रहना श्रेयस्कर नहीं; किन्तु इस पर सोचना-समझना तथा विचार-विनिमय करना देश, जाति, समाज सभी के लिए हितकर सिद्ध होगा!

श्रद्धाञ्जलियाँ

कवि : लेखक

●

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी, सुमित्रानन्दन पन्त, आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, राहुल सांकृत्यायन, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन', जय कुमार 'जलज,' उषा चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० ब्रजमोहन गुप्त, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, डॉ० जगदीश गुप्त, 'तन्मय' बुखारिया, 'कुसुम, 'शरद', विजय कुमार शर्मा, सुधाकर पाण्डेय, शिवकुमार, गङ्गाप्रसाद पाण्डेय, आचार्य क्षिति मोहन सेन तथा आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री आदि।

मैथिलीशरण गुप्त

नरसिंह निराला

●

आज कहीं नरसिंह निराला
हो जाता हतचेतन हाय !
तो क्या स्वार्थ साथ पाते तुम
उसे बनाकर बूढ़ी गाय !

भले मानुसों दया करो अब
उसको अपमानित न करो !
ईश्वर को क्या उत्तर दोगे
करके तुम ऐसा अन्याय !

माखनलाल चतुर्वेदी

आ तेरी जीवित मौतों को जीने का त्योहार बना दूँ

●

एक अभाव भरे सपने-सा आकर
बिखर बिखर कर जी में;

क्यों वरदान बोल जाता है,
अभिलाषों की रस लहरी में!
अपनेपन का यह धन मैंने,
मनसूबे खो-खोकर पाया;
सूरज को ढो-ढोकर पाया,
तारों को धो-धोकर पाया।
दृग-द्युति पथ-गति संभल-संभल कर,
चरण-चरण वृत वरण कर उठी!
और, मुडमाली की माला
उसका कण्ठाभरण कर उठी!
सूझों के रवि-पथ पर किसने,
आज प्राण का तेज संभाला,
किसे रूढ़ियों की दासी ने
वैभव से दे देश-निकाला;
पागल, और न जाने क्या-क्या
कह-कह, कर-कर उसे प्रताड़ित;
भरमाया, पर जग ने पाया
निश्चय एक प्रचंड निराला!

वह आँसू का हार नहीं,
भुजदंडों में संहार लिए है,
प्रतिभा के मरुथल में वह—
सूझों का पारावार लिए है।
एक अभाग सुहाग-विन्दु पर
वाणी ने, व्याकुल पहिचाना,
यह युग-राग समय से पहिले आकर,
दुखी हुआ मस्ताना!

विमल स्वर्ण-रेखा ने कितने, कैसे,
कुटिल प्रहार संभाले;
अपने मधुरिम दीप्ति-दान में
कितने-कितने सहे कसाले।
भूख,अनादर, बेसमझी, बदनामी
पहरेदार बन गये;
जिन्हें शीर्ष-शोभित-सुमनावलि,
समझा था, अंगार बन गये!
हास्य उन्हें वीभत्स,
और आँसू के मोती पागलपन थे!
कवि-पशु का मधु चूस-चूस कर,
युग-दल्लाल सनेह मगन थे।
सिसकों को सराहते थे ये
कसकों को प्रतिभा कहते थे,
अमर हृदय की हुंकारों में,
सभी प्रवाह पतित बहते थे।
तुक टूटी तो सिर झुकते थे,
तुक जुड़ती मुसका जाते थे,
जब जीवन सन्मुख आता
बस उसे बेतुका बतलाते थे!
उनकी मुस्कानों में विष था,
मधुर कृपाओं में काँटे थे;
रस निर्झर उनके बाँटे थे,
पागलपन कवि के बाँटे थे!
जिस दिन, तोड़-फोड़ कर खंडहर
कवि उतरा, ले नई जवानी,

जिस दिन, कूक उठी थी
सूझों के काँटों, फूलों की रानी !
जिस दिन, शब्दों के अर्थों ने
शोधों के डोरे पहिचाने,
जिस दिन, प्रखर परम रस कवि का उतरा—
श्वांसों पर अनजाने !
जिस दिन, रस में आग लगाकर,
विष को रस का प्राण दिया, कवि !
जिस दिन, सूझों के उजाड़ में
नन्दन का वरदान दिया, कवि !
उस दिन, समयहीनता बोली—
कौन, कहो, क्या अटपट बोला ?
उस दिन, तुक पर तुक रखकर—
जीनेवाला सिंहासन डोला !
और पेट भरने का जग,
कवि के मरने का साधन साधे,
कृष्ण ! कृष्ण !! चिल्लाया पथ में,
भूल गया वह— राधे ! राधे !!

तूने देखा—
प्राण दान तो अपमानों की खैरातें है;
कवि के लिए—अँधेरा दिन है,
और कालिमा की रातें हैं !
तब तूने जाना कवि होना
एकाकी उन्मादी जीवन;
और चल पड़ा मरण-पन्थ पर
लेकर अपना एकाकीपन !

आ तेरे इन बलिदानों पर
थोड़ा चन्दन चर्चित कर दूँ,
तेरे जी के घावों को आ,
युग के तरुण रुधिर से भर दूँ !
आ तेरी जीवित मौतों को
जीने का त्योहार बना दूँ;
सूझों के मंदिर के गायक,
तेरी कीर्ति-रागिनी गा दूँ !

सुमित्रानन्दन पन्त

हे, अमृत-पुत्र कवि

छंद बंद ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा;
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा !

मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर सी निःसृत;—
गलित, ललित आलोक, राशि, चिर, अकलुष अविजित !

स्फटिक शिलाओं से तूने वाणी का मंदिर;
शिल्प, बनाया,—ज्योति-कलश निज यश का धर चिर !

शिलीभूत सौन्दर्य, ज्ञान, आनंद अनश्वर;
शब्द-शब्द में तेरे उज्जवल जड़ित हिम-शिखर !

शुभ्र कल्पना की उड़ान, भव-भास्वर कलरव;
हंस, अंश वाणी के, तेरी प्रतिभा नित नव !

जीवन के कदर्प से अमलिन मानस सरसिज;
शोभित तेरा, वरद शारदा का आशन निज!
अमृत-पुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरणजित्;
स्वयं भारती मे तेरी हृत्तंत्री झंकृत!

डा० रामकुमार वर्मा

अभिनन्दन

●

कवि! तुमने संकेत किया जो
वह जीवन का स्पर्श बन गया;
जो तुमने लिख दिया वही
इस जीवन का निष्कर्ष बन गया;
तुमने जो कुछ दिया वही
दे देने का आदर्श बन गया;
पर जो जीवन तुम्हें मिला,
वह प्रतिदिन का संघर्ष बन गया!

परिमल ऐसा था जो अपनी
गति में ही बन गया गीतिका;
कविता ध्वनि ऐसी कि समर्पण
उसमें था रस और रीति का;

ऐसा बादल राग उठा जिसमे
थी भैरव की हुंकृति सी ;
उसकी छाया में सोई थी
कली जुही की प्रिय स्मृति सी !

ताण्डव और लास्य की ध्वनि में
मुक्त गीत तुमने गाए हैं;
जीवन के संपूर्ण चित्र
परिपूर्ण अमरता ले आए हैं;
आज तुम्हारा अभिनन्दन है
हिंदी के हे अमर महाकवि !
कोमल स्वर से सज्जित हो शशि,
भैरव स्वर मे भूषित हो रवि !

डॉ० रामविलास शर्मा

कवि निराला

●

वह सहज विलंबित मथर गति जिसको निहार,
गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार;
काले लहराते बाल, देव सा तन विशाल,
आर्यों का गर्वोन्नत, प्रशस्त, अविनीत भाल;
झंकृत करती थी जिसकी वाणी में अमोल,
शारदा सरस वीणा के सार्थक सधे बोल;

कुछ काम न आया वह कवित्व आर्यत्व आज,
संध्या की बेला शिथिल हो गए सभी साज ;
अब वन्य जंतुओं का पथ में रोदन कराल,
एकाकीपन के साथी हैं केवल शृगाल !

× × ×

कट गई डगर जीवन की, थोड़ी रही और,
इस वन में कुश कंटक, सोने को नहीं ठौर ;
क्षत चरण न विचलित हों, मुँह से निकले न आह,
थककर मत गिर पड़ना ओ साथी ! बीच राह ;
यह कहे न कोई—जीर्ण हो गया जब शरीर,
विचलित हो गया हृदय भी पीड़ा से अधीर ;
पथ में उन अमिट रक्त-चिन्हों की रहे शान,
मर मिटने को आते हैं पीछे नौजवान ;
इस बन में जहाँ अशुभ ये रोते हैं शृगाल,
निर्मित होगी जन-सत्ता की नगरी विशाल !

२

यह कवि अपराजेय 'निराला,'
जिसको मिला गरल का प्याला;
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है;
शिथिल त्वचा ढल-ढल है छाती,
लेकिन अभी संभाले थाती,
और उठाये विजय-पताका,
यह कवि है अपनी जनता का !
स्वर्ण-रेख सी उसकी रचना;
काल-निकष पर अमर अर्चना !

एक भाग्य की ओर पराजय
एक ओर हिन्दी जन की जय;
पर दुखकातर कवि की भाषा,
यह अपने भविष्य की आशा!
'मां! अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से वारो!'
भारत के इस रामराज्य पर,
हे कवि! तुम साक्षात व्यंगशर!

डॉ० धर्मवीर भारती

वह है कारे कजरारे मेघों का स्वामी

●

वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी!
ऐसा हुआ कि
युग की काली चट्टानों पर
पाँव जमाकर
वक्ष तानकर
शीश घुमाकर
उसने देखा
नीचे दूर दूर तक धरती का ज़र्रा ज़र्रा प्यासा है,
कई पीढ़ियाँ
बूँद बूँद को तरस तरस दम तोड़ चुकी हैं,
जिनकी एक एक हड्डी के पीछे

सौ सौ काले अन्धड़
भूखे कुत्तों से
आपस में
गुंथे जा रहे।
प्यासे मर जाने वालों की
लाशों की ढेरी के नीचे
कितने अनजाने अनदेखे
सपने
(जो न गीत बन पाये)
घुट घुट कर मिटते जाते हैं!
कोई अनजनमी दुनिया है,
जो इन
लाशों की ढेरी को
उलट पलट कर
ऊपर
उभर उभर आने को
मचल रही है!

वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी
उसके माथे से कन्धों तक
प्रतिभा के मतवाले बादल लहराते थे
मेघों की वीणा का गायक
धीर गभीर स्वरों मे बोला—
'झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर मे भर निज रोर।'
और उसी के होठों से
उड़ चलीं गीत की श्याम घटायें

पाँखें खोले
जैसे श्यामल हंसों की पाँतें लहरायें !
कई युगों के बाद आज फिर
कवि ने
मेघों को अपना संदेश दिया था,
लेकिन किसी यक्ष विरही का
यह करुणा-संदेश नहीं था,
युग बदला था.
और आज नव मेघदूत को,
युग-परिवर्तक कवि ने
विप्लव का गुरुतर आदेश दिया था !

बोला वह—
—'ओ विप्लव के बादल
घन, भेरी–गर्जन से
सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, नवजीवन को,
ऊँचा कर सिर, ताक रहे हैं,
ऐ विप्लव के बादल फिर फिर !'

हर जलधारा
कल्याणी गंगा बन जाये
अमृत बनकर प्यासी धरती को जीवन दे,
औ' लाशों का ढेर बहाकर
उस अनजनमी दुनिया को ऊपर ले आये
जो अन्दर ही अन्दर
गहरे अँधियारे से जूझ रही है।'
और उड़ चले

वे विप्लव के विषधर बादल
जिनके प्राणों में
थी छिपी हुई अमृत की गंगा !

बीते दिन वर्ष मास...
....
बहुत दिनों पर,
एक बार फिर
सहसा उस मेघों के स्वामी ने यह देखा—
वे विप्लव के काले बादल
एक एक कर बिन बरसे ही
लौट रहे हैं !
जैसे थककर
सांध्य-विहग घर वापस आये,
वैसे ही वे मेघदूत अब भग्नदूत वापस आये !

चट्टानों पर
पाँव जमाकर
वक्ष तानकर
उसने पूछा—
'झूम झूम कर
गरज गरज कर
बरस चुके तुम !'
अपराधी मेघों ने नीचे नयन कर लिये
और काँपकर वे यह बोले—
'विप्लव की प्रलयंकर धारा
कालकूट विष

सहन कर सके जो
धरती पर ऐसा मिला न कोई माथा !
विप्लव के प्राणों में छिपी हुई
अमृत की गंगा को
धा रण कर सकने वाली
मिली न कोई ऐसी प्रतिभा !
इसीलिये हम नभ के कोने कोने में
अब तक मँडराये
लेकिन बेबस
फिर बिन बरसे
वापस आये !
ओ कारे कजरारे मेघों के स्वामी
तुम्हीं बता दो
कौन बने इस युग का शकर !
जो कि गरल हसकर पी जाये
और जटायें खोल
अमृत की गंगा को भी धारण कर ले !

उठा निराला, उन काले मेघों का स्वामी
बोला—'कोई बात नहीं है
बड़े बड़ों ने हार दिया है कन्धा यदि तो
मेरे ही कन्धों पर होगा
अपने युग का गगावतरण !
मेरी ही प्रतिभा को हसकर कालकूट भी पीना होगा !'

और नये युग का शिव बनकर
उसने अपना सीना तान जटायें खोलीं !

एक एक कर वे काले जहरीले बादल
उतर गये उसके माथे पर
और नयन में छलक उठी अमृत की गंगा !
और इस तरह पूर्ण हुआ यह नये ढंग का गंगावतरण !

और आज वह कारे कजरारे मेघों का स्वामी
जहर सम्हाले, अमृत छिपाये
इस व्याकुल प्यासी धरती पर
पागल जैसा डोल रहा है,
आने वाले स्वर्ण युगों को
अमृत-कणों से सींचेगा वह.
हर विद्रोही क़दम
नई दुनिया की पगडंडी लिख देगा,
हर अलबेला गीत
मुखर स्वर बन जायेगा
उस भविष्य का
जो कि अँधेरे की पर्तों में अभी मूक है !

लेकिन युग ने उसको अभी नहीं समझा है
वह अवधूतों जैसा फिरता पागल नंगा,
प्राणों में तूफ़ान, पलक में अमृत-गंगा !
प्रतिभा में
सुकुमार सजल
घनश्याम घटायें
जिनके मेघों का गम्भीर अर्थमय गर्जन
है जब कभी फूट पड़ता अस्फुट वाणी में
जिसको समझ नहीं पाते हम

तो कहते हैं--
'यह है केवल पागलपन !'
कहते है—
चैतन्य महाप्रभु में, सरमद में,
ईशा में भी
कुछ ऐसा ही पागलपन था
उलट दिया था
जिसने अपने युग का तख्ता !

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

श्री सूर्यकान्त रवि-मणि-सम

परिपुष्ट - काय, अनपाय - द्योति,
तम - तोम हिमकर - ज्वलज्ज्योति,
भारती आरती सुधा ज्योति लौ विभ्रम;
उदात्त - प्रतिभ, अतिशय प्रशान्त,
आयत दृग, दीप्त ललाट, कान्त,
पर तेजोऽमन्द श्री सूर्यकान्त रवि - मणि - सम !
सेवा - व्रत - हत पार्थिव - प्रमोद,
हिन्दी-मन्दिर के मूर्ति मोद,
साहित्य - सरस अच्छोद - कमल - की माला;
चिर - आत्माराम, अगाध - मेध,
सारस्वत सित शर - शब्द - वेध,
अविराम सिद्ध वह नाम प्रसिद्ध 'निराला' !

डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

युगान्तरकारी कवि निराला के प्रति

हे चिर-विदग्ध !
शैशव में ही, कुछ मूक चिताओं के सिंगार
लेकर, तुम दहके बन अंगार
निर्धूम प्रज्वलित वह्नि वेष
अपनी ही सीमा में अशेष
करने को आतुर नामशेष
युग युग के कल्मष अनाचार।

तुम प्रखर चण्ड मार्तण्ड
तुम्हारे उग्र उग्र में नई दृष्टि
ताण्डव का मुक्तोन्माद प्रथम
फिर उथल-पुथल फिर प्रलय वृष्टि
हो नष्ट-भ्रष्ट जग जीर्ण-शीर्ण
फिर नई भूमि, फिर नई सृष्टि

तुम नव द्रष्टा,
विस्फारित नयनों के आगे
आश्वस्त अभय जीवन-प्रसार
लेकिन जर्जर जग—
रूढ़िग्रस्त, पाया न समझ
मनु के बेटे का अहंकार।
आया यौवन तुम झूम उठे
झूमा मधुवन

किस महाप्रलय की तैयारी ?
तुम दोनों हाथों पीने क्यों
मधु और गरल बारी, बारी ?
आरक्त नयन कवि ने खोले
देखा कुछ पल
मुस्कान मूक उत्तर केवल
तुम मन्त्रमुग्ध
हे चिर विग्दध।

२

आर्यों के पौरुष मूर्ति मान,
द्वादशादित्य
कवि कालिदास तुमको पाकर
कह उठते 'जय विक्रमादित्य'।
वह विरल-विरल छवि एकाकी
मैं सोच रहा किन हाथों ने
किस तरह तराशी होगी, बिना हाथ डोले
क्या साँस रोक या समाधिस्थ ?
किस छेनी से कैसे आँकी ?
जिस शिल्पी ने विख्यात रोम के महावीर
सीज़र की मूर्ति तराशी थी
वह कहीं देख पाता तुमको
तो एक बार हिल जाती उसकी भी टाँकी।
जाने कब शिव के जटा-जूट से
भागीरथी प्रथम छूटी
कब अनायास वाणी फूटी
आक्षितिज प्रतिध्वनित हुआ
मंद्र - घन गर्जन स्वन

आसिंधु-संतरण करता था
वह राग प्रमन।
उपवन की उर्वर मिट्टी में
युग युग से संचित जो सुवास
पाकर नव-स्पर्श तुम्हारा वह फूटी सहास,
किस पारिजात के 'परिमल' की नव गन्ध-अन्ध
फूटी बनकर निर्बन्ध छन्द
कू कू-कर कुहुक उठा उपवन
गमका कण कण।
यों शिथिल शीत का हुआ अन्त
हेमन्त बन गया नव-वसन्त।
उत्फुल्ल प्रकृति-के निभृत कुंज में
आई धीमी सी पुकार
जैसे वर्षा की बूँदों पर
हो थिरक उठा पहला मलार
जो मत्त समीरण का रस पी
जड़-चेतन विमोहिता वन श्री
क्षण भर हरिणी सी चकित खड़ी
हो गन्ध लुब्ध तव-चरणों पर यों लोट पड़ी;
जैसे हिमगिरि के पदतल में
सागर की लहर छहरती सी टकरा जा
तन फेनोज्ज्वल
मुख हासोच्छ्वल
उद्दाम तुम्हारा यौवन था
उमड़ा निर्झर, फूटी धारा
चट्टान ढ़हीं, बन्धन टूटे

टूटी कारा, टूटी कारा
कुछ मेड़ बाँधने वालों का भी
साथ-साथ वारा-न्यारा।
दृग दृग में नूतन कौतूहल
यह कौन-कौन का कोलाहल
जिसमें पहला ही फूल पिरोया गया अभी
तुम उस माला के धागे से
गहरी निद्रा में जागे से
अस्फुट स्वर धीमे से बोले 'यह अनामिका'
फिर फूटी तान नई, गान नए
माल बनी गीतिका
मुखरित उपवन आँगन
छाया प्रशमन प्रशमन
गमक उठी बीथिका।
फिर उठा मन्द्र से तार तलक
फिर तार मुदार उदार झलक
कंपन की वह बंकिम हिलोर
जिससे विद्युत-कण बँधे
और आकर्षित करते ओर-छोर
कुछ बाह्य दृष्टि कुछ निज में रम
तुम एक विरोधाभास स्वयम्
तुम निर्गुण-सगुण, अर्धनर-नारीश्वर
के रूप परुष-कोमल
तुम विषम-समन्वित अमिय-गरल
तुम सुराधार यां सुरसरि-जल—
दोनों समान कर चुके, शुद्ध मन का नियोग

क्या विरक्ति और आसक्ति और क्या योग-भोग
तुम आस्ति-नास्ति के संधि-पत्र
साधना मध्य भी साम्य तुम्हारा बल, पौरुष
चिन्ता की धारा मुहुर्मुहु विच्छिन्न
धधकती भ्रान्ति विवश
तुम युग के वह दुर्जय प्रवाह
जो त्रस्त-ध्वस्त कर रहा विषमता के कगार
जो महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन
वह फूट पड़ी बन नई शक्ति का मुक्तद्वार।
चाहते कथा कहना युग युग की अपर व्यास
या पुनः शक्ति आराधन हो
मर्य्यादित संयम 'तुलसिदास'
तुम मुक्तक और प्रबन्ध
कभी पंखुरियों की झीनी फुहार
फिर युग:सन्धि, जागरण
सिंधु का महोल्लास विक्षुब्ध ज्वार
तुम अनय विषमता के विरुद्ध
पायक – सायक संधान
आज आकर्ण धनुर्ज्या खड़े तान
आर्यों के पौरुष मूर्तिमान।

२

हे नूतन-छवि के कलाकार
गुंजित अनहद-रव सहस्त्रार
अब क्यों उदास अस्ताचल की लाली निहार ?
थक गये ? होठ में पपड़ी, रुँधा कंठ
सजल आँखें धूमिल
सच, इस मंज़िल का ओर-छोर

पाना मुश्किल
पर अभी तना है वक्ष
धमनियाँ रक्तमयी
छाती धड़ धड़
मांसल - जंघा
उन्मुक्त साँस
दृढ़ अडिग चरण
इसलिए बढ़ो
गिरि शृंग चढ़ो
आ रहे अन्यथा जो पीछे
देखते तुम्हारी चरण-रेख
क्या सोचेंगे ? क्या मार्गभ्रष्ट
या विधि-विडम्बना का कुलेख ?
आगे समाप्त सब चिह्न
नहीं दिखलाई देंगे दीप्ति-चरण
तो नव-उत्साही नाविक भी
हिचकेंगे शायद खेने में
डगमग नौकाएँ सिंधु-तरण।
तुम सोच रहे हो संभवतः
आधे जीवन के पार खड़े
आजीवन समरारूढ़, झेलते वार
आन पर रहे अड़े
फिर भी तम ज्यों का त्यों प्रशस्त
मानव की आत्मा पड़ी हुई पहले ही जैसी अस्त-व्यस्त
आजीवन जलना व्यर्थ गया
सारा श्रम हाय हुआ निष्फल
सुन रहे कर रहा व्यंग भरा

'फिर अट्टहास रावण खल-खल।'

तुमसे, जिसकी चुप रही व्यथा

पहले पहले यह सुनी कथा

'बह गया स्नेह-निर्झर संबल

रह गया रेत, जीवन केवल,

क्या क्या दिन देखे, क्या न सहा

क्या क्या विपदाएँ नहीं ढ़ही

फिर भी तुम जिसने आज तलक

अपनी अस्फुट धीमी उसांस भी

मुक्त-व्योम मे नहीं कही

तुम एकाकी अजनबी बने

दर दर घूमे, भटके व्याकुल

सूने में सिसके, अकुलाए

पर देख नहीं पाया कोई

गीले कपोल भीगा आँचल।

यद्यपि न छिपा, जानती मही

दुख ही जीवन की कथा रही

फिर भी तुम नवस्रष्टा, शिल्पी, उद्धत मनोज

व्यापक कल्पना, विधुर अंतर, उन्मुक्त ओज

जब जब आया भूचाल

लिया तुमने सम्हाल

करतलगत कर उफान

पत्रों की छाती पर संयत उतार

झंकृत कर डाले, वीणावादिनि

की वीणा के सुप्त तार।

पर वात्याचक्र, प्रभंजन

आवर्त्तित मण्डल
घेरे था धूम्र कुहासे-सा
सब भूमण्डल।
पिस गये उसी में तुम
जिसमें पिसता आया जर्जर-समाज
जिसने जीवन की सुख-समृद्धि
कर डाली भस्मीभूत आज।
सदियों से चूस-चूस जिसने
कर दिया खोखला अंतर-तन
जीने की इच्छा व्यंग बनी
हो गए लुप्त जीवन-साधन
दाने दाने को तरस गईं अगणित आँखें
दो बूँद दूध के लिए ललक
हिचकी लेकर शिशु हुए मौन
माताओं की छाती विदीर्ण, अवरुद्ध कंठ, रह गई कलख
बे-बरसे बिखर गए कितनी साधों के घन
कृमि-कीट-सदृश फुट-पाथों पर
मनु को प्यारी संतान मिट गई बिलख बिलख।
कितने उद्भट - भट कलाकार
जो देश जाति के स्वाभिमान
जिन पर युग का दायित्व भार
हत्, आयुक्षीण चल दिए
प्रज्वलित विषपायी,
मैं पूछ रहा हूँ अनाचार की सत्ता से
युग की इस विषम व्यवस्था से
इस विभीषिका का कौन आज उत्तरदायी ?
किस हिंसक-पशु की दाढ़ों से

उन्मुक्त-हरिण भयभीत त्रस्त
किसने मेरे कवि का जीवन
कर डाला हतप्रभ अस्त-व्यस्त ?
किसकी शोषण की भट्टी में
जल गईं युगों की आशाएँ—
माँ का दुलार
भाई भाई का सहज प्यार
विष ही विष चारों ओर, भयानक आर्त्तनाद
घुटती साँसें, करुणाविगलित कातर-पुकार
ओ निर्दय तस्कर, नर-पिशाच
युग माँग रहा इसका उत्तर
प्रतिशोध माँगता है तुझसे
जन-वाणी का उत्तेजित स्वर।
कल के पदमर्दित उठ बैठे
हो सावधान
ललकारों पर ललकार
बज रही रणभेरी
जन-जन जागे, हुंकार उठी
जलती मशाल
तम काँप रहा
पौ फटने में थोड़ी देरी।
इसलिए शक्ति-पूजन हो फिर
नव-दुर्गा अष्टभुजा का आवाहन
अपना बल-पौरुष याद करो
अवरुद्ध कण्ठ को वाणी दो
घर-घर में रण का आमन्त्रण।

कह दो कवि इस पूर्णाहुति में
कोई न रहे पीछे
गृह-गृह में गूँज उठे
युग की गुहार,
गम्भीर-घोष-घन ओज तुम्हारा फूट पड़े
'जागो फिर एक बार'

हे महावीर,
क्या याद दिलानी होगी फिर
प्रक्षिप्त तुम्हारी महाशक्ति
जो समिधा के अभाव में
अब तक पड़ी रही बनकर विरक्ति
युग की दानवता, हिंसा, शोषण, अनाचार—
का आते ही मन में विचार
'तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धरा हो स्फीत वक्ष
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष
दृढ़ वायु वेग वढ़, डुबा अतल में दीन नाव'
आप्लावित कर दो वसुंधरा के सब अभाव।
आ रही नई पीढ़ी युवकों की साथ साथ
तव चरणों पर निज झुका माथ
उत्सुक, अमंद
दृढ़व्रती सजग सोचती हुई
जिस जगह गिरेगा देव तुम्हारा रक्तबिंदु
हम वहां तौल देंगे अगणित शिर रक्तस्नात।
सगठन हमारा देख शत्रु हो रहा पस्त
चाहिए हमें तो सिर्फ़ तुम्हारा वरद-हस्त
फिर देखो मेरे फ़कीर अलमस्त

हम कोटि - कोटि कण्ठों का ले विश्वास अमर
वाणी में जन-जन की विह्वल आकांक्षा का नव-मुखरित-स्वर
दुर्गम पथ पर
बढ़ चले निडर
तम-तोम रौंदते हुए
कंठ में अनल गान
शीघ्रातिशीघ्र लाने को
वह स्वर्णिम - विहान
जिसकी शीतल छाया में होगा
शांति-स्नेह-सुख नव-सर्जन
सब विश्व एक परिवार, एक घरबार
एक चूल्हा, आँगन।

फिर उपवन के कलि-कुसुम विवश
पोषक रस खाद्य बिना परवश
इस तरह नहीं झर पाएँगे
मेरे कवि, पुत्री पुत्र किसी मानव के
औषधि दूध बिना
इस तरह नहीं मर पाएँगे
सब पुलक-हुलास भरे, दधिमुख
पहिने घूमेंगे चीनांशुक
दर दर मारा न फिरेगा फिर
युग का सर्वोत्तम कलाकार

यों धूलिधूसरित, मलिन वस्त्र
पैरों में फटी बिवाई ले
बेचता फिरेगा नहीं
लेखनी का अमूल्य सर्वाधिकार।

उस दिन की बाट जोहते हम—
उद्भासित होगी अणु अणु में
जब जनयुग की महिमा अपार
खुल जायेगा बहुजनहिताय
जन संस्कृति का नव मुक्तिद्वार
स्वागत में कलियाँ विहँसेंगी
सौरभ देगा आँचल पसार
कण कण अपनत्व लुटाएगा
सिमटे सिमटेगा नहीं प्यार
सर आँखों पर ले तुम्हें, सभी
पाकर फूले न समाएँगे
हे देव ! तुम्हारी वाणी से
गृह-गृह मुखरित हो जाएँगे
गद् गद् उर, अपलक नयनों से
अभिमान सहित तुमको निहार
न्यौछावर होंगे बार बार
हे नूतन-छवि के कलाकार !

जयकुमार 'जलज'

निराला के प्रति

●

सचमुच बहुत निराला है व्यक्तित्व तुम्हारा,
देह वज्र से और प्राण निर्मित पराग से।

महाकाव्य-सा एक-एक उच्छ्वास तुम्हारा,
सूर्य-सत्य-सा एक-एक विश्वास तुम्हारा;
एक-एक आँसू ज्यों उत्तर रामचरित-सा,
हृदय मनुजता रामचन्द्र के लिए भरत-सा;
कविता और मनुजता का गगा-यमुना के
मिलन-तीर्थ तुम कहीं श्रेष्ठ पावन प्रयाग से।

तुम ज्यों शरच्चन्द्र की अतः सलिला पात्रा,
'अक्षर' का भी उच्चारण बदले वह मात्रा;
फिर भी जिसके लिखने में अल्प प्रयास है,
निरभिमान है, निर्विकार जिसका विकास है;
पलकों पर मरुथल लेकिन नयनों में सागर,
अधरों पर तो राग कण्ठ निर्मित विराग से।

और तुम्हारी कविता पौरुषमयी रागिनी,
तोड़ छन्द के कूल बाढ़-सी मुक्त गामिनी;
किन्तु भाव के ग्राम कि जिससे हानि न पाते,
लय के बालक जिसमें भय की ग्लानि न पाते;
जिसकी गर्जन में 'विधवा' का भी न दबा स्वर,
जिसके छींटे मधुर फाग के रंग-राग से।

सचमुच बहुत निराला है व्यक्तित्व तुम्हारा,
देह वज्र से और प्राण निर्मित पराग से।

उषा चतुर्वेदी

निराला से

●

तुम हिमगिरि से व्यक्तित्व धरा के ऊपर,
गीतों की गंगा कभी न रुकने पाती;
तुम आग लिए सूरज को अपने उर में,
जीवन की गर्मी कभी न चुकने पाती;
सब कुछ है, लेकिन एक प्रश्न बचता है—
तुमने बदले में आखिर क्या-क्या पाया ?
लोगों के उत्तर कुछ हों, मेरा उत्तर—
जल को क्या देगी शुष्क अधर की माया !

रामवृक्ष बेनीपुरी

निराला की जय

●

निराला की जय !
मतवाला की जय !
निराला—
जिसका तन निराला,

जिसका मन निराला,
जिसका रंग निराला,
जिसका ढंग निराला !
जिसकी भुजाओं में प्रहार है,
जिसकी अँगुलियों में झंकार है;
जो बंधनों को तोड़ता है,
जो धारा को मोड़ता है;
जो स्वच्छन्द है,
निर्द्वन्द है;
जिसके कर-स्पर्श से लेखनी तूलिका बन गई
और तूलिका तितली—
सपक्ष, गतिशील, सतरंगी, बहुरंगी !
उसने आकाश की ओर देखा—
मेघ-मन्द्र बज उठे !
उसकी निगाह नीची हुई—
जुही की कली खिल उठी !
कविर्मनीषा: परिभू स्वयम्भू—
तुम्हारे रूप में तुम्हारे सामने खड़ा हुआ !
स्वीकार करो तुम—
निराला मतवाला है !
निराला मतवाला है ! !
क्यों न कहोगे ?
कैसे न कहोगे ?
क्योंकि वह मतवाला है;
मतों को बदलने वाला है !
वह नये मत का मन्त्र देने वाला है !
मन्त्र द्रष्टा है; मन्त्र स्रष्टा है !

डॉ० जगदीश गुप्त

जीवन-मुक्त

●

अमर हिन्दी के हिमालय! वंदनीय विशाल,
पर्व · पावन - प्राण, ज्योतित गर्व उन्नत भाल!
दीर्घनासा, अधर पतले, सबल वृषभस्कन्ध,
युग-पुरुष! युग-बाहु लम्बित, युग-चरण निर्बन्ध!
वसन गैरिक, सान्ध्य घन के आवरण में सूर्य,
धूलि-धूसर देह श्लथ, अन्तर प्रभा से पूर्य!
दृष्टि तीखी, ज्यों समय पर कर रही हो व्यंग,
गीत के स्वर, ताल, लय पर थिहर उठते अंग!
स्वगत-मुखरित मौन, गुरू, गंभीर, धीर, प्रशान्त,
पी गये युग का गरल शंकर सदृश निर्भ्रान्त!
हो चुकीं, अब सो चुकीं, सब यातनाएँ भुक्त,
रम्य सुरसरि-तीर, तन-मन मुक्त, जीवन-मुक्त!

'तन्मय' बुखारिया

कविवर 'निराला' के प्रति

●

तुम जियो, युग-युग जिऐंगे स्वर तुम्हारे!
पंचतत्वप्रेरणा सब सृष्टि भर में,

क्या मनुज, क्या चिर प्रकृति, क्या सुर-असुर में;
और तो सब थे, रहे सामान्य ही पर,
बस गया वैचित्र्य, बस, भर तव अधर में;
अन्य अक्षर क्षर कि बस अक्षर तुम्हारे !

कवि-प्रसू भारत-धरा के लाल हो तुम,
क्रान्तिकारिणी शक्तियों की ढाल हो तुम;
हैं चकित-विस्मित पुरातन रूढ़िवादी,
कवि, कि हिन्दी-विश्व के भूचाल हो तुम;
काव्य अभ्यागत स्वयं हँस घर तुम्हारे !

तुम कठिनता के सरलता के समन्वय,
केलि तुममें कर रहे सँग सूर्य-शशि—द्वय;
पाप-पुण्यों से परे, हे पूर्ण मानव,
सिन्धु-मरुस्थल साथ ही तुममें हुए लय;
कुछ न उपमा योग्यतम, कविवर, तुम्हारे !

तुम जियो, युग-युग जिएँगे स्वर तुम्हारे !!

शिव कुमार

मैं प्रणाम करता हूँ

●

संघर्षों के कन्धों पर निज बाँह डालकर,
तुम चलते पद-चिह्नों में विप्लव पलता है ;

परम्पराओं का अँधियारा कंपित होता,
प्राणों में जैसे सूरज का तप जलता है।
मैं प्रणाम करता हूँ तुमको हे, कवि नायक !
हर आघात मह्हूँ क्षण भर भी हार न जाऊँ;
जो पथ सींचा स्वयं खून से तुमने अपने,
उस पथ पर कुछ दूरी तक मैं भी जा पाऊँ।

शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

ओ सरस्वती के वरद पुत्र

तू है उदार, तू है उदार,
ओ सरस्वती के वरद पुत्र,
ओ काव्य-कामिनी के सिंगार,
तुझ पर तन मन यौवन निसार,
तू है उदार, तू है उदार !

तुझमे पौरुष तुझमें सम्बल,
तेरी आँखों में तेज प्रबल;
मुड़ गए अनेकों चरण, जिधर—
मोडे तूने निज दृग - शत दल;

तेरी लय से गुञ्जित मधुवन,
तेरे स्वर से झंकृत सितार !

तू कांतिपुञ्ज तू कीर्त्तिमान,
तू अडिग हिमालय सा महान;
तेरा मन जैसे अगम सिन्धु,
जीवन है जैसे आसमान;
तुझसे गर्वित तेरा स्वदेश,
तेरी गुण-गाथायें अपार।

सुधाकर पाण्डेय

अमर स्वर तेरे गायक रे

गूंजती रहे वीणा की तान, बाँधकर जीवन-तन-मन-प्राण—
अमर स्वर तेरे गायक रे!

तिमिर में पल जल गल चुपचाप—
वरण कर रहे सभी अभिशाप,
पानकर गरल स्वयं अम्लान,
लुटाते सुधा सिद्ध-रस गान,
गूंजती रहे वीणा की तान, बाँधकर जीवन-तन-मन-प्राण—
अमर स्वर तेरे गायक रे!

धरा के साधक अमर नवीन,
स्वयं की सुधि-बुधि से नित हीन;
भारती की सुधि में लवलीन,
वही वह तुममें आ तल्लीन;

दान भव में यह ज्योति प्रयाण, चलाता रहे तिमिर पर बाण—
अमित तू ज्योति विधायक रे !

गिरा से धरा - गगन तुम साध—
रहे मधु अक्षर ध्वनि में बाँध;
बसाकर मुक्त-काव्य-छविराज,
पहन कर यायावर का साज;
बढ़ाते रहो शारदी मान, छेड़कर अलख भैरवी तान—
अरुण नव छवि उन्नायक रे !
अमर स्वर तेरे गायक रे !

जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र

सन्त-निराला

●

स्वर्गंगा का रत्नपुण्डरी
भूगंगा ढिग आया;
सौरभ-सरस लुटाकर जिसने
कवि-अलि-वृन्द लभाया।
अर्थ, कर्म, लोभादिक जलवत्
बने,—न व्यापी माया;
सतत घोलती आई अमृत
जिनकी यौगिक काया।

जिनका जीवन जगहित सांचा
सौम्य साधना लाया;
जिनको शक्ति विरक्ति दे रही
त्यक्त किया जो पाया।

जिनको युग भावी जानेगा
कहले मन जो भाया;
तुलसी की प्रतिमूर्ति, पूर्ति बन
मंन निराला आया!

कैलाश 'कल्पित'

गुरुवर के प्रति

●

जितना स्नेह मिला युगकवि से पाया नहीं अन्यत्र;
प्रयागराज की पावन भू में घूमा हूँ सर्वत्र।
घूमा हूँ सर्वत्र सभी को आंका मैंने;
सम्पादक बन द्वार द्वार को झाँका मैंने।
मैंने कवि में कुछ विशेषता अपनी पाई;
सहज, सरल उपलब्ध, स्नेहमय दिये दिखाई।
दिये दिखाई पावन गङ्गा की धारा सम;
उनमें देखा मानवता गुण ज्ञान सु-संगम।
संगम-कक्ष, कक्ष मन्दिर सम मूर्ति,निराला मूर्ति;

देवों की देवत्व साधना की वह करता पूर्ति।
वह करता है पूर्ति 'अर्चना' की थाली की ;
दीप्त हो रही ज्योति 'अराधन' की लाली की।
लाली की है बात, झुके हैं
मस्तक सारे !

ओमप्रकाश सिंह

साधक निराला

कल्याणी के चरण पखारे।
कवि-चल लक चलक जल ढारे।

श्रद्धा उमड़ी सिन्धु-सुधा सी,
प्रीति प्रतीति बढ़ी स्पर्धा सी,
पूज्य कामना पूर्ण प्रभा सी,

हृदय दीप शतवार उतारे।

जगे छन्द जो गत के सोये,
वर्ष वर्ष शत पुष्प सजोये,
हृत्तंत्री तनुतार पिरोये,

गीत समर्पित पद उपहारे।

सगुण मूर्तिमय मिली सान्त्वना,
चरम कोटि को प्राप्त 'अर्चना',

कवि की युग पद साध्य साधना,
पंचम कंठ सुकंठ निखारे।

केशवचन्द्र वर्मा

निराला जी के प्रति

हिन्दी सोती ओढ़ रजाई जब जाड़ों की रात,
तुमने पानी डाल जगाया, यह कैसा उत्पात ?
सड़े हुये भावों के फूलों से जब बदबू आने-
लगी, वहीं पर जुही की कली खिली गंध बिखराने।

तुम्हें डराने कूद पड़े सब खों खों कर इक साथ,
बांह चढ़ाली पर तुमने करने को दो दो हाथ;
पूँछ दबाकर बैठ गये वे एक न चल पाई फिर,
गौरव समझ आज करते हैं वही अर्चना नतशिर।

जिसे कभी हम समझ रहे थे गिरी कहाँ की गाज,
उसे प्रगति कह गला फाड़ कर चिल्लाते हैं आज;
कवि के नाते समझ चुके थे हम जिसको नालायक,
तुम हमको ले गये सड़क की उस पत्थर कुटनी तक।

बंधनमुक्त छंद से कवि सब रहते थे घबड़ाये,
जैसे स्ट्राइक करके लड़के फिरते मुँह लटकाये;
अटेन्डेन्स की भांति सवैये किन्तु हुये जब गायब,
बहुत झेंपकर लिखने लेकिन लगे सभी अब।

हमको अपने ही गौरव का ज्ञात नहीं था मोल,
तुमने ऐसा मूल्य आंक कर दी हैं आंखें खोल;
केवल एक चाय के कुल्हड़ पर जो कविता पाठ-
करते, वे भी मांग रहे हैं रुपिया नौ कम साठ।

अमर क्रांति के गायक फिर से एक बार कुछ गाओ,
हिन्दी की कंडम धरती पर विप्लव घन बरसाओ।

पद्मानन्द चतुर्वेदी

कोटि प्रज्ञावतेन्दु प्रभाहारकः

●

श्रेष्ठ-साहित्य निर्माण निष्ठव्रतः
गद्य - पद्य प्रवाहाभिभूतो रसः
कोटि प्रज्ञावतेन्दु प्रभाहारकः
वर्धतां वर्धतां नो 'निराला' कविः।

निराला के प्रति

●

निराला साहित्य-गंगा के भागीरथ हैं। आधुनिक युग में जब हिन्दी साहित्य गंगा का मार्ग अवरुद्ध हो गया था उस वक्त पर्वत गात छेदकर उन्होंने द्वार खोला और पाञ्चजन्य बजाते आगे आगे बढ़े और अब तो—'दम्भागदंत्युशलैर्विषमे, पनीते......सुखं कलभाः प्रयान्ति।'

निराला ने द्वार ही नहीं खोला बल्कि अपने अनमोल सृजन द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। कोई समय था, जब कि ईर्ष्यावश कितने ही साहित्यकार निराला के महत्व को स्वीकार नहीं करते थे, लेकिन यह बीते युग की बात है। आज निराला को न मानने वाला नास्तिक समझा जायेगा। आने वाली पीढ़ियाँ इस महान कलाकार की प्रतिभा के बारे में कितनी ही कल्पनायें करेंगी, किन्तु वह उसके सरल, निष्कपट, उदार जीवन की झाँकी कहाँ पा सकेंगी? निराला जैसी विभूति दुर्लभ है। उनकी साहित्य प्रतिभा की भाँति उनकी महामानवता भी साधारण मानदंड के माप से बाहर की चीज है। निराला चिरायु हों।

× × ×

अश्वघोष, कालिदास, भवभूति आदि का साहित्य पढ़ते समय हम सोचते हैं कि कहीं हम उन महान् साहित्यकारों को अपनी आँखों से देख पाते!... सम्भव है कुछ समय पश्चात् भाषा में परिवर्तन हो जाए; भाषा का स्वरूप बदल जाए; उस समय भी हम भाषा का अनुवाद कर सकते हैं; परन्तु कवि अथवा साहित्यकार का स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि हम 'निराला' को अपनी आँखों से देख रहे हैं; इतना ही नहीं,

हम उनसे घनिष्ट रूप से परिचित भी हैं। निश्चय ही हमारी भावी पीढ़ियाँ हमारे इस सौभाग्य के लिए हमसे ईर्ष्या करेगी।......

सरहपा नालन्दा विश्वविद्यालय में आचार्य थे। सरहपा ने अपभ्रंश बोली को अपनाकर चौपाई और दोहा का निर्माण किया था। निराला सरहपा की भाँति जाग्रत एवं स्वप्न की अवस्थाओं से परे हैं।......जिस समय उच्च भावों को प्रकट करने की किसी में क्षमता नहीं थी, निराला ने उन भावों को प्रकट किया। सरहपा जीवन में विद्रोही थे और निराला को भी हम उसी विद्रोही रूप में पाते हैं। निराला जी एक विलक्षण पुरुष हैं। उन्होंने हमारे साहित्य के लिए महान् कार्य किया है। वह आधुनिक हिन्दी के भागीरथ हैं। यह अकेले उनके प्रयास का फल है कि आज हिन्दी काव्यधारा मुक्त होकर प्रवाहित हो रही है। खड़ीबोली सदा निराला की ऋणी रहेगी; इन्होने इसे एक नई दिशा और रूप प्रदान किया।

—महापंडित राहुल सांकृत्यायन

कवि श्री निराला उस छाया युग के कृती हैं जिसने जीवन में उमड़ते हुए विद्रोह को संगीत का स्वर और भाव का मुक्त-सूक्ष्म आकाश दिया। वे ऐसे युग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो उस विद्रोह का परिचय कठोर धरती पर विषम कण्ठ में ही चाहता है।......

उनका अनुकरण किसी के लिए सुकर नहीं रहा है, इसी से उनके स्वर को अनेक प्रतिध्वनियों का जाल नहीं घेर सका। उनका व्यक्तित्व अव्यवस्था में दुर्बोध है, इसी से आलोचक अपने अनुमानों के विरामों से उसे नहीं बाँध सके। वे अकेले और उनका स्वर अकेला है। जैसे आँधी बिना दिशा का नाम बताए हुए ही हमें अपने साथ उड़ा ले चलती है; भूकम्प बिना कारण का परिचय दिये हुए ही हमारे पैरों को कम्पित कर देता है, वैसे ही उनका परिचित काव्य भी एक अपरिचित उद्दाम वेग से हमें स्पर्श करता है; चिर-परिचित पथ पर सधे हुए हमारे पैरों को क्षण भर के लिए अपनी उग्र गति से घेर लेना,

चिर-निश्चित लक्ष्य पर जमी हमारी दृष्टि को पल भर के लिए अपनी दिशा में फेर लेना ही उसका हमसे परिचय है और काव्य का जीवन से यही परिचय अपेक्षित भी है ।

उन्होंने अनेक आघात सहे हैं जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व पर अमिट चिह्न छोड़ गए हैं। यदि उन चिह्नों को हम उनके संघर्ष का प्रमाण माने तो उनकी आत्मा के सहजात संस्कार समझ लेना तथा उनके काव्य की भाव-भूमि और उसकी मूलगत प्रेरणा तक पहुँच जाना सहज हो जायेगा ।

आज का युग साहित्यकार के लिए दो धार वाली असि बन गया है—यदि वह विषम परिस्थितियों से समझौता करके जीवन की सुविधाएँ प्राप्त कर लेता है तो उसका साहित्य मर जाता है और यदि वह ऐसी संधि की स्वीकृति नहीं देता तो उसका जीवन कठिन हो जाता है। कवि निराला ने अपने अदम्य विद्रोह की छाया में एक को बचा लिया है, दूसरे को सुरक्षित रखने का प्रश्न उनसे अधिक उनके सहयोगियों से सम्बन्ध रखता है ।

—महादेवी

कला अंतस्तल पर शयन करने वाली खुमारी वृति होती है। वह रमणीयता से ओत-पोत रहती है और कलाकार होता है वह चतुर चितेरा, जो निज को खोकर उस कला को प्राप्त करे तथा मानव-कल्याण के लिए मुक्त हस्त से उसका दान करदे । न उसमें प्रदर्शन हो और न प्रसिद्धि का प्रलोभन ।......

......इस महामानव 'निराला' ने खो दिया अपने को वाणी के पावन चरणों में और अथक-अटूट साधना से प्राप्त काव्यसिद्धि को मुक्त कंठ से गा, निर्लेप हो, शून्य में बिखेर दिया। न जाने कितने उसके आस्वादन से कवि होने का गर्व कर बैठे; किन्तु यह काव्य-स्रष्टा आँखें मूँदे, मौन धारण किये, भागीरथी के तट पर निश्चेष्ट बैठा रहा। ईर्ष्या, विद्वेष, प्रसिद्धि और मोह से सर्वथा अलिप्त । गङ्गा की कलरव करती हुई चंचल ऊर्मियाँ इस मूक सर्वस्वत्यागी कलाकार का युग-युगान्त तक शुभगान करती रहेंगी ।

—आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र

निराला जी ने हिन्दी साहित्य की सर्वतोमुखी श्री-वृद्धि में जो योगदान दिया है, वह आकार की दृष्टि से जितना विशाल है, कला की दृष्टि से उतना ही अद्वितीय भी। मैंने निराला जी की जो थोड़ी-बहुत रचनाएँ पढ़ने और समझने का प्रयास किया है, उनके आधार पर मेरी व्यक्तिगत राय है कि उनका उदात्त व्यक्तित्व जिस स्पष्टता के साथ उनकी रचनाओं में उभर कर साधारण जीवन के साथ मिलकर एकाकार हो जाता है और फिर साधारण से उठकर जिस अनूठी विशिष्टता तक पहुँच जाता है, यह चमत्कार केवल मात्र साहित्यकारों में नहीं होता। मेरी तुच्छ दृष्टि में शायद यही वह महामानव है जो केवल देना ही जानता है, देन ही जिसका जीवन है। निराला जी की ६१ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भावना अभिव्यक्त करने के साथ-साथ हार्दिक कामना करता हूँ कि वह हिन्दी साहित्य की नई पीढ़ी के अजस्त्र प्रेरणा-स्रोत के रूप में पूर्ण स्वस्थ तथा दीर्घायु हों।

—वारान्निकोव

[रूसी सांस्कृतिक मण्डल के सदस्य तथा सुप्रसिद्ध रूसी लेखक।]

जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है, न पन्त जी का। यह निराला जी की सम्मुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है।

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

प्रसिद्ध कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के गीतों में अतीत गौरव का जहाँ गान है, वहीं वर्तमान के लिये आत्मविश्वास का स्वर भी। इसके अतिरिक्त उनके गीतों में भविष्य की अभिलाषा एवं उज्जवल आदर्श के चित्रों का भी समावेश पाया जाता है। वे अपने देश में क्रान्ति की लहर उत्पन्न करने के भी इच्छुक हैं। आध्यात्मिक भावों को व्यक्त करने वाले

अद्वैत कवि रूप में कबीर के समान रहस्यवादी स्वर में गुनगुना उठते हैं। प्रकृति में सजीवता का आरोप कर उसमें मानवीय भाव भरने का भी प्रयत्न उन्होंने किया है। वे प्रेम को सर्वव्यापक समझते हैं। उसकी व्यापकता और प्रभाव का वर्णन उसे उन्होंने समुद्रवत् बतलाकर भी किया है। निराला जी ने प्रेम के विरह-पक्ष को भी बहुत बड़ा महत्व दिया है और उसे तपाकर शुद्ध कर देने वाली आग के रूप में चित्रित किया है।

—परशुराम चतुर्वेदी

हिन्दी में जैसा विरोध निराला का हुआ है वैसा किसी का नहीं हुआ। इस विरोध का कारण उनके साहित्य का युगान्तरकारी पक्ष है। साहित्य और समाज में कौन ऐसा निहित स्वार्थ है जिसे निराला से भय न हुआ हो? नायिका-भेद के उपासक पुरान-पन्थी कवि, जाति-प्रथा के सहारे जीने वाले धर्मध्वज पण्डे-पुरोहित, सामन्तों और पूँजीपतियों के दलाल, सभी इस व्यक्तित्व से चौकन्ने थे। इस विरोध ने निराला को आज क्षत-विक्षत कर दिया है। प्रतिक्रिया के थपेड़े सहता हुआ यह वीर आज निरुपाय हो गया है; लेकिन उसके संघर्ष का मूल्य क्या कभी हिन्दी संसार चुका पायेगा!

× × ×

निराला का सम्मान सबसे अधिक इस बात में है कि हम उसके साहित्य को पढ़ें, समझें और सीखें। श्रद्धा का पर्दा डालकर उसके साहित्य को ढँक देने से हिन्दी का हित न होगा। कितना भी विरोध हो, निराला अपने साहित्य के प्रति सच्चा रहा है। उसकी ईमानदारी अनमोल है। उसने समझौता नहीं किया। जिसे ठीक समझा, उस पर अडिग रहा। हमारे कलात्मक साहित्य के विकास का यही रास्ता है।

निराला विद्रोह और परिवर्तन का कवि है; वह जीवन-संघर्ष में कूदने के के लिए आह्वान करने वाला कवि है।

—डॉ० रामविलास शर्मा

आधुनिक कवियों में निराला जी की कविताओं में भाषा के दो रूप पृथक-पृथक प्रतीत होते हैं। उनके व्यक्तित्व का वासन्तिक विकास दोनों ही स्थानों में सुस्पष्ट अनुभूत होता है। निश्चय ही सूर और विद्यापति की कूटोक्तियों के सदृश भी उनके पद हैं; किन्तु उन्हें छोड़ देने पर भी सहृदयता की दृष्टि से वह न सूर के समीप आते हैं, न वाग्वैदग्ध्य के अनुसार विद्यापति के निकट। सब मिलाकर उनकी भाषा-संस्कृति तुलसीदास से अधिक मेल खाती है।

—आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री

निराला जी आरंभ से ही एक विद्रोही कवि के रूप में हिन्दी की काव्य-भूमि पर उतरते हुए दिखाई दिए। तुक की बंधी-बंधायी पगडंडी पर चलनेवाली हिन्दी कविता को उन्होंने मुक्त कर एक स्वतंत्र मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। भाषा और छंद की सीमाएं उनकी काव्यधारा की अबाध गति एवं सबल वेग को एक क्षण भी न रोक सकीं। इसीलिए एक क्रांतिकारी तथा युग-प्रवर्तक कवि के रूप में हमारे युग ने उनका स्वागत किया।

निराला जी वस्तुतः हर क्षेत्र में निराले हैं—रचनाओं में, व्यक्तित्व में तथा रहन-सहन में। नंगे बदन पर भारीपन, ओजभरी आँखें, बड़ा चेहरा, कमर से नीचे तक तहमद और सबके ऊपर अंग-प्रत्यग से झलकते हुए फक्कड़पन से युक्त उनका पौरुष। इस बाह्य रूप का यह ओज और पौरुष ही जैसे इनकी कविता के अंतर में समा गया है। इसीलिए उनकी कविता सबसे निराली है और वह स्वयं सबसे निराले हैं।

—द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी

साहित्य साधना के लिए अपना सर्वस्व दान कर देने की भारतीय परम्परा को आधुनिक हिन्दी साहित्य में सजीव रखने वाले निराला के साहित्यिक

व्यक्तित्व में हिमालय की दृढ़ता और नवनीत की स्निग्ध कोमलता का अद्भुत समन्वय हुआ है। आधुनिक हिन्दी कविता में जितनी प्रवृत्तियां का आविर्भाव हुआ है प्रायः उन सभी में निराला जी का दान अत्यत महत्वपूर्ण है। उनमें से कुछ के तो वे जन्मदाता ही हैं। हिन्दी कविता को छन्द की कारा से मुक्त कर उन्होंने उसके भावी विकास का पथ प्रशस्त किया। स्वतंत्रता की भावना को उन की रचनाओं से बल मिला और भारतीय दर्शन तथा संस्कृति को उनकी रचनाओं में वाणी मिली।

गद्य के क्षेत्र मे भी उनका दान कम महत्वपूर्ण नहीं है। गद्य की उनकी अपनी अलग सशक्त शैली है और हिन्दी के उपन्यास साहित्य में उनके उपन्यासों का अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान है।

लक्ष्मी की जीवन भर उपेक्षा करने वाले, सरस्वती के अमर पुत्र, निराला का मैं अभिनन्दन करता हूँ।

—डॉ० ब्रजमोहन गुप्त

एक विचारक ने कहीं कहा है कि जब किसी व्यक्ति की पूजा होने लगती है, तब समझो कि जिस उद्देश्य को प्रतिष्ठा के लिए उसका जीवन उभरा उसका लोप होने लगा। इधर निराला जी के इर्द-गिर्द अजीब से भक्तों का एक संप्रदाय जुट रहा है जो निराला जी के साथ सत्या-सत्य अनेक विशेषणों को-संयुक्त कर उनकी प्रतिष्ठा तो नहीं बढाता, हाँ, उनकी आड़ में अपने को स्थापित करने की चेष्टा करता है। देवता प्रायः मौन रह जाता है और पुजारी उसके नाम पर, उसकी ओर से वस्तुत: कुछ कह सुन लेते हैं।

जहाँ असत्य है, अत्युक्ति है, सत्य की प्रतिष्ठा नहीं है, तहाँ साहित्य 'स्व' रूप में उपलब्ध नहीं है। निराला की महत्ता भक्तों के 'सुपरलेटिव्स' से परे है। वह इसलिए महान नहीं हैं कि कोई संत हैं या अति-मानव हैं। हमारे लिए वह इसलिए महान हैं कि उन्होंने हमारे साहित्य को उस शक्ति की दीक्षा दी जो अन्तर की आध्यात्मिक ज्योति से उत्पन्न होती है। वह महान इसलिए भी हैं कि जब १९२० के बाद एक नवीन जातीयता राष्ट्र के मानस में करवट ले रहीं थी

तब उन्होंने स्वप्न देखा—उस स्वप्न को जीवन की साधना में बदल दिया। वह सुजलां सुफलां मृदुलां वंगभूमि की मिट्टी पर उत्तर प्रदेश के कठोर रूक्ष शक्ति-बीज की भाँति हैं जिनमें हम बंगाल में उत्तर प्रदेश को और उत्तर प्रदेश में को बंगाल को देखते हैं। निराला जी का सबसे साहसिक प्रयोग यही है कि बंग साहित्य विशेषतः उसके अभिनय-मंच के निकट हिन्दी को लाने का स्वप्न लेकर हिन्दी में आये; छंद-मुक्त शैली का प्रयोग हिन्दी में उन्होंने इसी दृष्टि से आरम्भ किया था और मतवाला-युग के आरम्भ में आपने एक निजीपत्र में मुझे स्पष्ट लिखा भी था। उस समय तो हमारे आचार्यों को इस विद्रोही की उजड्डता बहुत खली पर प्रकारान्तर से उसने साहित्यानुभूतियों के पक्षी को मुक्त कर दिया—मनमोहन पिंजरे से बाहर निकाल कर आकाश के अनन्त अन्तराल में उड़ने के लिए। उनकी बहुत सी सेवाएँ हैं जिनके कारण वह महान हैं; पर यही वह नींव हैं, जिस पर उनका हिन्दी साहित्यकार का जीवन निर्मित्त हुआ है; यही वह स्वप्न है, जो बढ़ता गया और कुछ ऐसा बढ़ा है कि उन लोगों पर भी छा गया है, जिन्होंने उपहास एवं कटूक्तियों से हिन्दी साहित्य में उनके उदय का गान गाया।

उन्होंने हमें बहुत कुछ दिया, पर उनकी सबसे बड़ी देन वह स्वप्न और साधना का जीवन है जिसमें फरिश्तों की नहीं, मानव की प्रतिष्ठा है; सच्चे मानवी कलाकार की भाँति उनमें रक्त, मांस, वासना, उद्दाम भावावेग, गहरी अनुभूति, स्वप्न और उड़ान सभी कुछ है। निश्चय ही वह हमारे साहित्य की परिपक्व अवस्था के एक अच्छे प्रतिनिधि के रूप में अभिनंदनीय हैं, अतिमानव एवं देवता का रूप देना मानो उन्हें मृत घोषित करना है।

—रामनाथ 'सुमन'

निराला जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों में हैं। उनके जीवन में हमें जो फक्कड़पन मिलता है वही उनके काव्य में भी। फिर मौलिकता के तो वे मूर्त्तिमन्तरूप ही हैं। तुलसीदास जी पर न जाने कितने साहित्यकारों ने कितना

लिखा है, परन्तु निराला जी ने जो कुछ लिखा है वह अपना अलग ही स्थान रखता है। जिन पश्चिमी साहित्यकारों को 'नोबुलप्राइज़' मिला है उनमें से अधिकांश साहित्यकारों का साहित्य मैंने देखा है और मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि निराला जी ने यदि योरोप के किसी देश में अथवा योरोप में जन्म लिया होता और वहाँ की किसी भाषा में इतना और इस प्रकार का साहित्य लिखा होता तो उन्हें अवश्य 'नोबुलप्राइज़' मिला होता। आधुनिक हिन्दी-जगत के इस महाकवि के चरणों में मैं अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—सेठ गोविन्ददास

महाकवि निराला का नाम हिन्दी साहित्य के नवयुग के प्रमुख निर्माताओं में सदैव आदर के साथ लिया जायगा। वे स्वतंत्र प्रकृति के बहुमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार रहे हैं। कविता के क्षेत्र में उन्होंने जो क्रान्ति की वह उनकी स्वतंत्र मनोवृत्ति तथा विलक्षण प्रतिभा की परिचायक है। उनके गीतों में आध्यात्मिकता तथा दार्शनिक चिन्तन मिलता है और साथ ही सहृदयता का आभास भी।

कविवर निराला का हृदय मानवता की भावना से ओत-प्रोत रहा है। इस मानवता का दर्शन उनके अमर काव्य में मिलता है और व्यावहारिक जीवन में भी। पीड़ित और शोषित वर्ग के प्रति उनके हृदय में सहज सहानुभूति जाग्रत हो उठी। निराला जी की लेखनी की तरह उनका व्यक्तित्व भी बड़ा ओजपूर्ण रहा है। हिन्दी साहित्य को जो प्रौढ़ काव्य उन्होंने प्रदान किया है वह उनका अमर स्मारक सिद्ध होगा। बहुत से तरुण कवियों और साहित्यिकों ने उनके काव्य तथा जीवन से प्रेरणा प्राप्त की है और उनके पद-चिन्हों पर चलने का प्रयत्न किया है और आगे भी करते रहेंगे।

हिन्दी साहित्य के इस युगान्तरकारी कवि-पुगंव का मैं हृदय से अभिनन्दन करता हूँ और भगवान् से कामना करता हूँ कि उन्हें स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन प्रदान करे।

—शंकरदयालु श्रीवास्तव

स्वर्ण प्रज्जवलित ज्वालाओं में तपकर कुंदन बनता है और मनुष्य भौतिक ताप में। इससे हृदय की कलुषता राख हो जाती है और आध्यात्मिकता को गहरा पुट मिलता है। वह देदीप्यमान हो उठता है और लोगों की आँखें चुंधिया जाती हैं।

महाकवि 'निराला' ने काव्य-जगत के हलाहल का पान भी किया और भौतिक दाह को सहा भी, किन्तु न वह इस विचलित ही हुए, न आतुर ही। इससे उनकी धारणा-शक्ति को यथेष्ट बल मिला और उन्होंने अमरकाव्य का सृजन किया।

—शरदकुमार मिश्र 'शरद'

......यदि तथाकथित राष्ट्रीय कवियो और साहित्यकारों के समान सुविधाओ और साधनों का शतांश भी इस महाकवि को प्राप्त हो जाता, तो वह कभी का 'कालीदास' और 'तुलसीदास' की कोटि में जा बैठता।'

—विजयकुमार शर्मा एम० ए०

आज भी निराला के महान व्यक्तित्व पर मैं सोचता हूँ तो हृदय अपने से विद्रोह कर उठता है। आज जिस गली में महामानव टहलते हैं—जहाँ वे रहते हैं—वहाँ कुछ टूटे-फूटे मकान और लटकती हुई हरी डालियाँ ही उनकी चिरसंगिनी हैं।

एक दिन वह भी आयेगा, जब दुनियाँ के लोग इस गली के रजकण को गरिमा के प्रसाद के रूप में मस्तक पर धारण करेंगे और निराला के चिर-संगी-साथी, उनके मित्र, सदा सदा के लिये इतिहास की वस्तु बन जायेंगे।

—रत्नाकर पाण्डेय

अब से शायद दो-तीन साल पहले महाकवि निराला की एक आठ पंक्तियों की कविता पढ़ी थी, जिसकी पहली पंक्ति थी—'मानव जहाँ बैल घोड़ा है'।

आज के समाज में जनता-जनार्दन के लिये आवाज उठाने वाले महाकवि के सम्मुख श्रद्धावनत हूँ। उनकी कविता से जो अनुगूँज उठती है—कि मानव पशु न रहकर मानव बने, सामाजिक व्यवस्था बदले, मानवता ऊँची उठे—उसी को और अधिक मुखर करने की शक्ति और साहस का संचार नई पीढ़ी में हो, तभी महाकवि का उचित सम्मान हो सकेगा।

मेरी कामना है कि वह दिन शीघ्र आये जब निरालाजी के सपनों का युग प्रत्यक्ष होकर रहे।

—रमेश वर्मा

छायावादी कवियों को, खासकर निराला को, न तो किसी नेता ने, न किसी डी० लिट् ने उनके सृजन के अनुकूल युग-प्रवर्तक का विशेषण दिया, फिर भी उनका साहित्य अपनी महिमा से मण्डित है।

—गङ्गाप्रसाद पाण्डेय

निराला का सा क्रांतिप्रिय और विद्रोही व्यक्तित्व रखने वाला कवि आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में कोई नहीं हुआ। अपनी विद्रोही मनोवृत्ति के कारण ही मैं समझता हूँ कि छायावादी युग और उसके कवियों में निराला को जितना 'सफ़र' करना पड़ा है उतना किसी को नहीं। उनकी स्वच्छन्द और स्वतंत्र स्थापनाओं के कारण ही पुरातनता और शास्त्रीयता के दुराग्रहियों ने निराला की उपेक्षा की। निराला जी के नवीन प्रयोगों और उद्भावनाओं की भित्ति में किन महत् उद्देश्यों का विचार था इसको स्पष्ट करना इस मूक दार्शनिक कला-साधक का सच्चा मूल्यांकन करना होगा।

—ज्ञानरंजन

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में निराला का आगमन एक विद्रोह स्वर की सूचना देता है। आरम्भ से आज तक उनके काव्य में गतानुगतिका के प्रति विद्रोह है।

पुराने सन्त कवियों के समान उनमें अपने व्यक्तित्व को पुरुष भाव में व्यक्त करने की तेजस्विता है। यही निराला का प्रधान आकर्षण है।

साहित्य में, सामाजिक चेतना में, सर्वत्र एक प्रकार की मुक्ति की वे अभिव्यक्ति करते आए हैं। उनकी अनुभूति तीव्र और आवेग वेगवान है। यह स्वछन्दता उनके नाम को सार्थक करती है। वस्तुतः निराला के समान स्वछन्दता प्रेमी कवि हिन्दी में दूसरा नहीं।

हिन्दी काव्य में नवीन स्वर लाने वाले, उस काल के तरुण कवियों में, निराला प्रमुख कवियों में से एक हैं। प्रसाद जी को काल ने हमसे छीन लिया है; किन्तु सौभाग्य से निराला हमारे बीच आज भी उपस्थित हैं। खड़ी बोली को आज जो समादर मिल रहा है, उसके लिए यह बोली इनकी चिर ऋणी रहेगी।

निराला जी ने काव्य में रहस्य की चिरन्तन वाणी ध्वनित की। उन्होंने प्रमाणित किया कि छन्द कविता का प्राण नहीं, उसके रूप को सँवारने का साधन है।......हमारी काव्य शैली की जड़ता को निराला ने कठिन आघात देकर दूर-किया, सन्त काव्य के साथ निराला का जगह-जगह मेल है। वही फक्कड़पन, वही मस्ती, काव्य में अपने अन्तर की अनुभूतियों का अबाध वर्णन, अज्ञात प्रियतम के मर्म की व्याकुलता, रूढ़ियों के प्रति विप्लवी भाव, विरोध की उपेक्षा और अनन्त का सन्देश, निराला के काव्य की विशेषताएँ हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी उनकी वाणी भी 'अटपटी-बाणी' हो गयी है। यह हर्ष का विषय है कि हिन्दी में जिस धारा का उन्होंने प्रवर्तन किया उसके पूर्णतम विकास को देखने के लिए वे हमारे बीच आज उपस्थित हैं; अपने हाथों लगाए पौधे को वे पनपते और फूलते-फलते देख रहे हैं।

—आचार्य क्षितिमोहन सेन

ओंकार शरद

कुतुबमीनार

......निराला जी को यदि आपने न देखा हो तो इस तरह सोचिए कि जैसे सिकन्दर की फौज का कोई सेनापति हो (यद्यपि हिन्दी साहित्य में वे आज स्वयं सिकन्दर का मर्तबा रखते हैं) जिसका चित्र ऐतिहासिक पुस्तकों में आपने देखा होगा।......

......निराला का व्यक्तित्व उसी अल्हड़पन और मस्ती का प्रतीक है जिसकी कल्पना युगों पहले कबीर ने की थी......जा घर फूँके आपना चले हमारे साथ।......

......निराला को पहली बार देखा था। १९४३ की इलाहाबाद की नुमाइश, वे कुछ साहित्यकारों के साथ घूम रहे थे। जानते हैं—कैसा लगा था मन को—जैसे बेर-बबूर के जंगल में कोई बटवृक्ष झूमता चल रहा हो!

......एक दिन, एक बरसाती सुबह, जब बादल छाए थे, निराला जी पधारे। चा पीकर आराम कुर्सी पर लेटे ही थे कि बादल फट पड़े, और निराला जी खोकर कुछ गुनगुनाने लगे; फिर अचानक बोल उठे—'जिस समय रवीन्द्रनाथ का घोड़ा बंगाल से छूटा तो उसकी रास थामने की हिम्मत किसी में न थी। लेकिन मैंने ही उस घोड़े को थाम लिया।......हमारा रंग जो आज है यह असल नहीं है। यह तो धूप में काला हो गया है। असल रंग तो रवीन्द्रनाथ वाला था। इसका बहुत लम्बा हिसाब-किताब है।'

......उस दिन श्रीमती 'वनफूल' ने निराला का प्रथम बार दर्शन पाया तो अचानक कह उठीं—'कोवि निराला ! विशालकाय, मस्त, टॉल, ग्रीक कट ।'

......वह निराला का शोक दिन था । बहन होमवती की मृत्यु की सूचना उसी दिन (यद्यपि २० दिनों बाद) मिली थी । व्यथा ने उन्हे पागल कर दिया था । गली का चक्कर लगा लगाकर कह रहे थे—'होमवती नहीं रहीं, कितनी छोटी उम्र थी । पता नहीं दवा भी हो सकी या सरोज (बेटी) की तरह बिना दवा के ही मर गई । यह एक एक करके सब चले जा रहे हैं । यह क्या हो रहा है—क्या होगा ? होमवती बहुत अच्छा लिखती थी—अब नहीं रही ।'—रह रहकर वे बहुत करुण स्वरों में गा उठते—कासे कहूँ मैं दुखवा सजनी !

...उस दिन निराला को प्रणाम कर के वापस आते हुए नटराज पृथ्वीराज कपूर ने जब मेरा कंधा झिझकोर दिया—'देखा ! मार्क किया ? बिल्कुल ईसा की शक्ल है । यह देश का कुतुबमीनार है, टूट रहा है । कोई इन्तजाम नहीं ?'

मैं अचानक कह उठा था—'बिल्कुल ईसा हैं— केवल सूली पर चढ़ना बाकी है । शायद तभी दुनिया की आँख खुलेगी !'

●

गीत : कविताएँ

भारती-वन्दना, जुही की कली, बादल राग, भिक्षुक, छत्रपति शिवाजी का पत्र, भर देते हो, राम की शक्ति पूजा, दे मैं करूँ वरण, सरोज स्मृति, तुलसीदास, तुम और मैं, भगवान बुद्ध के प्रति, युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति, न आये वीर जवाहर लाल, चर्खा चला, ग़ज़ल, विधवा और अर्चना आदि निराला जी की अट्ठारह श्रेष्ठतम कविताएँ।

भारती-वन्दना

भारती, जय-विजयकरे
कनक - शस्य - कमलधरे ।

लङ्का पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण-युगल,
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे !

तरु - तृण-वन-लता-वसन,
अञ्चल में खचित सुमन,
गङ्गा ज्योतिजल-कण,
धवल-धार हार गले !

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख - शतरव - मुखरे !

[१६२८ ई०, गीतिका]

जुही की कली

●

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी—
स्नेह-स्वप्न-मग्न—अमल-कोमल-तनु तरुणी
जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्राङ्क में।
वासन्ती निशा थी;
विरह-विधुर प्रिया-सङ्ग छोड़
किसी दूर-देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित् गहन-गिरि-कानन
कुञ्ज-लता - पुञ्जों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली - खिली - साथ !
सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

इस पर जागी नहीं,
चूक - क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही—
किम्वा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये,
कौन कहे ?
निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झाड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल;
चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रङ्ग प्यारे सङ्ग ।

[१६१६ ई०, अनामिका]

बादल राग

●

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—

यह तेरी रण तरी,
भरी आंकाक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल !
फिर फिर।

बार बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र हुंकार।
अशनि-पात से शायित उन्नत शत शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर,
गगनस्पर्शी स्पर्धा-धीर।
हँसते हैं छोटे पौधे लघु-भार—
शस्य अपार,
हिल हिल,
खिल खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक-भवन,
सदा पङ्क ही पर होता जल-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,
रोग-शोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर।

रुद्ध कोश, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना - अङ्ग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से, बादल,
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण - बाहु, है शीर्ण - शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार!

[१६२० ई०, परिमल]

भिच्छुक

●

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट - पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,

बाँये से वे मलते हुए पेट चलते हैं,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।

भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता—भाग्य-विधाता से क्या पाते ?—
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे हैं झूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

[१९२१ ई०, परिमल]

छत्रपति शिवाजी का पत्र

●

वीर !—सरदारों के सरदार !—महाराज !
बहु-जाति-क्यारियों के पत्र-पुष्प-दल-भरे
आन-बान-शान वाले भारत उद्यान के
नायक हो, रक्षक हो,
वासन्ती सुरभि को हृदय से हरकर
दिगन्त भरनेवाला पवन ज्यों।
वंशज हो चेतन अमल-अंश
हृदयाधिकारी रघुकुल-मणि रघुनाथ के।
किन्तु हाय, वीर राजपूतों की
गौरव-प्रलम्ब ग्रीवा—
अवनत हो रही है आज तुमसे महाराज,
मोगल-दल विगलित-बल हो रहे हैं राजपूत,

बाबर के वंश की
देखो, आज राजलक्ष्मी
प्रखर से प्रखरतर
प्रखरतम दीखती
दुपहर की धूप-सी,
दुर्मद ज्यों सिन्धुनद,
और तुम उसके साथ वर्षा की बाढ़ जैसे
भरते हो प्रबल वेग प्लावन का,
बहता है देश निज
धन-जन-कुटुम्ब-भाई—
अपने सहोदर, मित्र,
निःसहाय, त्रस्त भी, उपायशून्य ।
वीरता की गोद पर
मोद भरने वाले शूर तुम,
मेधा के महान,
राजनीति में हो अद्वितीय जयसिंह,
सेवा हो स्वीकृत,
है नमस्कार, साथ ही
आसीस भी है बार बार ।
कारण संसार के, विश्व-रूप,
तुम प्रसन्न हो,
हृदय की आँख दें,
देखो तुम न्याय-मार्ग ।
सुना है मैंने,
तुम सेना से पाटकर दक्षिण की भूमि को
मुझ पर चढ़ आये हो,

जय-श्री जयसिंह,
मोगल-सिंहासन के,
औरङ्ग के पैरों के नीचे तुम रखोगे;—
काढ़कर यहाँ के प्राण
देना चाहते हो मोगलों को तुम जीवनदान।
काढ़कर हमारा हृदय
ऐसे सदय, कीर्ति से
जाओगे अपनी पताका लेकर।
हाय री यशोलिप्सा
अन्धे की दिवस तू,—
अन्धकार रात-सी।
लपट में झपटकर
प्यासों मरने वाले मृग की मरीचिका है।

[१९२२ ई०, परिमल]

भर देते हो

●

भर देते हो
बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
मेरे अन्तर में आते हो, देव, निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु
बार बार कर-कञ्ज बढ़ाकर;
अन्धकार में मेरा रोदन

सिक्त धरा के अञ्चल को
करता है क्षण-क्षण—
कुसुम कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण,
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।

[१६२२ ई०, अनामिका]

राम की शक्ति पूजा

●

कुछ क्षण तक रहकर मौन महज निज कोमल स्वर,
बोले रघुमणि— 'मित्रवर, विजय होगी न समर;
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण;
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।' कहते छल-छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल,
रुक गया कण्ठ, चमका लक्ष्मण तेजः प्रचण्ड,
धँस गया धरा में कपि गह-युग-पद, मसक दण्ड;
स्थिर जाम्बवान—समझते हुए ज्यों सकल भाव,
व्याकुल सुग्रीव—हुआ उर में ज्यों विषम घाव,
निश्चित-सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम,
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम।

× × ×

यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण-युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल;
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चञ्चल,
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल,
देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय,
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयन-द्वय;—
'धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का न हो सका !'
वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
'कहती थी माता मुझे सदा राजीव नयन !
दो नील-कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।'
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त लक-लक करता वह महाफलक;
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन।
जिस क्षण बँध गया बेधने का दृग दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय :—
'साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन-धन्य राम !'
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।

देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध-अस्त्र-सज्जित,
मन्द-स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रण - रङ्ग - राग,
मस्तक पर शंकर।' पद-पद्मों पर श्रद्धाभर
श्रीराघव हुए प्रणत मन्द - स्वर - वन्दन कर।
'होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।'
कह महाशक्ति राम के वदन में हुईं लीन।

[१६३६ ई०, दूसरी अनामिका]

दे मैं करूँ वरण

●

दे मैं करूँ वरण

जननि, दुख हरण पद-राग-रञ्जित मरण।
भीरुता के बँधे पाश सब छिन्न हों,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों,
आज्ञा, जननि, दिवस-निशि करूँ अनुसरण।
लाञ्छना इन्धन हृदय-तल जले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल,
पारकर जीवन-प्रलोभन समुपकरण।
प्राण-संघात के सिन्धु के तीर मैं,

गिनता रहूँगा न, कितने तरङ्ग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण।

[१९३२ ई०, अणिमा]

सरोज स्मृति

●

ऊनविंश पर जो प्रथम चरण
तेरा वह जीवन – सिन्धु तरण;
तनये, ली कर दृक्पात तरुण
जनक से जन्म की विदा अरुण !
गीते मेरी, तज रूप - नाम
वर लिया अमर शाश्वत विराम
पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय,
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण - चरण
कह—'पितः, पूर्ण - आलोक-वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण
'सरोज' का ज्योति:शरण—तरण !'
अशब्द अधरों का सुना भाष,
मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ, अहरह रह निर्भर
ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित - कविते, शत - शत-जर्जर
छोड़कर पिता को पृथ्वी पर

तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार—
'जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम,
तारूँगा कर गह दुस्तर तम ?'—
कहता तेरा प्रयाण सविनय,—
कोई न था अन्य भावोदय।
श्रावण-नभ का स्तब्धान्धकार
शुक्ला प्रथमा, कर गई पार!
धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहिनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न;
अपने आँसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख-चित्त।
सोचा है नत हो बार बार—
'यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर,
यह रत्नहार लोकोत्तर वर।'—
अन्यथा जहाँ है भाव शुद्ध,
साहित्य-कला-कौशल-प्रबुद्ध,

हैं दिये हुए मेरे प्रमाण
कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशलहस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त।—

[१९३५ ई०, दूसरी 'अनामिका']

तुलसीदास

●

'धिक ! आए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए ;
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़, चाम !
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए !'

× × ×

जागा जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा वह न थी, अनल प्रतिभा वह;
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।

× × ×

'जागो जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अन्ध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल;
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी , हे तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्घन महिमाबल।

× × ×

जगमग जीवन का अन्त्य भाष—
'जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का;
मेरा उसमें गृह के भीतर,
देखूँगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं जो वर जीवन-भर बहने का।'

[१९३८ ई०, तुलसीदास]

तुम और मैं

●

तुम तुङ्ग - हिमालय - शृङ्ग
और मैं चञ्चल - गति सुर - सरिता,
तुम विमल - हृदय - उच्छ्वास
और मैं कान्त - कामिनी - कविता;
तुम प्रेम और मैं 'शान्ति,
तुम सुरापान - घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

तुम दिनकर के खर किरण जाल
मैं सरसिज की मुस्कान.
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान;
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्चल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरञ्जिनी भाषा,
तुम नन्दन - वन - घन विटप
और मैं सुख - शीतल - तल शाखा;
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया।

तुम प्रेममयी के कण्ठहार
मैं वेणी काल - नागिनी,
तुम कर-पल्लव-झङ्कृत सितार
मैं व्याकुल विरह - रागिनी,
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मन-मोहन,
मैं उन अधरों की वेणु।

तुम पथिक दूर के श्रान्त
और मैं बाट - जोहती आशा,
तुम भव - सागर दुस्तार,
पार जाने की मैं अभिलाषा;
तुम नभ हो, मैं हूँ नीलिमा,

तुम शरत-काल के बाल-इन्दु,
मैं हूँ निशीथ - मधुरिमा।

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय - समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम जञ्जीर;
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल - गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता, अचला भक्ति।

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक - कल - कूजन - तान,
तुम मदन - पञ्च - शर - हस्त
और मैं हूँ मुग्धा अनजान;
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन-पटल-श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका रचना।

तुम रण-ताण्डव उन्माद-नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद-ओंकार - सार
मैं कवि - शृंगार - शिरोमणि।
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द - शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

[१६४० ई०, अनामिका]

भगवान बुद्ध के प्रति

●

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दीख रहा; सुख के लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में है मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली जहाज़ नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वादग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत-नयन मुख, कहते हुए अतीत भयंकर
था मानव के लिए, पतित था वहाँ विश्वमन,
अपटु अशिक्षित वन्य हमारे रहे बन्धुगण;
नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्कसिद्ध हैं, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।
वहाँ बिना कुछ कहे, सत्य - वाणी के मन्दिर,
जैसे उतरे थे तुम, उतर रहो हो फिर फिर
मानव के मन में,—जैसे जीवन में निश्चित
विमुख भोग से, राजकुँवर, त्याग कर सर्वस्थित
एकमात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुख, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को, तथागत!
फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुए सम्मिलित,
धीरे धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित;
भिन्न रूप से भिन्न - भिन्न धर्मों में सञ्चित

हुए भाव, मानव न रहे करुणा से वंचित;
फूटे शत-शत उत्स सहज - मानवता-जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके;
छल के, बल के पंकिल भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।

[१६४० ई०, अणिमा]

युगावतार-परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति

●

पराधीन भारत की प्रज्ञा
क्षीण हुई जब,
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वर्णत्रय
पश्चिम में गत,
जागे पराशक्ति के वैभव
स्वप्रकाश तब,
आर पार के, बिना तार के
नाद अनाहत।
हे समृद्ध, बहु विध साधन से
सिद्ध हुए तुम,
अगर विविध रूप के, एक
बिन्दु में अवसित,
अनायास हे, स्नेह-पाश से
विद्ध हुए तुम,
अरचित रुचि की रचनाओं में

हुए समाहित।
अभिनन्दन के नूतन
बन्दनवार बने तुम,
तरूणों के उछ्वास करों में
उत्थित होकर,
जैसे बादल में विद्युत्,
व्यंजना घने तुम,
खोई सृष्टि सकल
नव-जल-धारा में रोकर।
फिर नूतन प्रभात में
नूतन कर से आये,
ज्योतिर्मय, फिर हँसकर
दिङ्मण्डल पर छाये।

[१६३६-४६ ई०, नये पत्ते]

न आये वीर जवाहरलाल

●

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
बिजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सर सर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल।
पुरवाई की हैं फुफकारें, छन-छन ये बिस की बौछारें,
हम हैं जैसे गुफ़ा में समाये, न आये वीर जवाहरलाल।
मॅहगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नङ्गे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमायें, न आये वीर जवाहरलाल।

[१६३६-४६ ई०, बेला]

चर्खा चला

●

वेदों के बाद जाति चार भागों में बँटी,
यही रामराज है।
वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोड़ी,
छन्दों में गीत रचे, मन्त्रों को छोड़कर,
मानव को मान दिया,
धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गाये।
कली ज्योति में खिली
मिट्टी से चढ़ती हुई।
'वर्जिन स्वैल', 'गूढ़ अर्थ' अबके परिणाम हैं।
कृष्ण ने भी जमीं पकड़ी,
इन्द्र की पूजा की जगह
गोवर्धन को पुजाया;
मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया।
हल को बलदेव ने हथियार बनाया,
कन्धे पर डाले फिरे।
खेती हरी भरी हुई।
यहाँ तक पहुँचते अभी दुनियाँ को देर है

[१६३६-४६ ई०, नये पत्ते]

ग़ज़ल

किनारा वह हमसे किये जा रहे हैं,
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं।

जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने,
वही सूत तोड़े लिये जा रहे हैं।

छिपी चोट की बात पूछी तो बोले,
निराशा के डोरे सिये जा रहे हैं।

ज़माने की रफ़्तार में कैसा तूफ़ाँ,
मरे जा रहे हैं, जिये जा रहे हैं।

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।

[१९३९-४६ ई०, बेला]

विधवा

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर - काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी-लता-सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।

षड्ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव-पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वछन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार विम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुव-तारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।
हैं करुणा-इससे पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन मधुकर की पाँखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार।
उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का, मौन बढ़ाकर
अति छिन्न हुए भीगे अञ्चल में मन को—
दुख-रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर।
रोती है अस्फुट स्वर में;
दुख सुनता है आकाश धीर,—
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर।
कौन उसको धीरज दे सके,

दु:ख का भार कौन ले सके ?
यह दु:ख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव, अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?
ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

[१६१६ ई०, परिमल]

अर्चना

●

वर दे, वीणा वादिनी वर दे !
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे !

काट अन्ध-उर के बन्धन स्तर,
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर—
जगमग जग करदे !

नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्ररव,
नव नभ के नव विहग वृन्द को—
नव पर, नव स्वर दो !

[१६३६-४६ ई०, बेला]

परिशिष्ट

काव्य : आलोचना

अनामिका (प्राचीन), परिमल, अनामिका (नवीन), गीतिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना तथा गीत-गुंज आदि निराला जी के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य पर एक परिचयात्मक आलोचना।

ख

'निराला' का काव्य-साहित्य; एक परिचयात्मक आलोचना

द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मक और नीतिपरक कविताओं के पश्चात् सामयिक परिस्थितियों, वाह्य प्रभावों आदि से प्रेरणा ग्रहण करके हिन्दी में अनेक कविताएँ लिखी गईं। इन कविताओं में स्वच्छन्दता की भावना थी और धीरे-धीरे व्यक्ति को प्रधानता प्राप्त हो रही थी। व्यक्तिगत सुख-दुःख, दुर्बलताएँ निस्संकोच अभिव्यक्ति प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थीं। बात को सीधे-सादे ढंग से न कहकर एक कलात्मक ढंग से कहने और इस प्रकार पद्य को कविता की स्थिति में पहुँचा देने का सहज प्रयत्न दिखाई पड़ रहा था। ऐसे ही कुछेक लक्षणों को लेकर और पूर्ववर्ती संस्कारों से मुक्त होकर श्री जयशंकर प्रसाद धीरे-धीरे हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बना रहे थे। श्री सुमित्रानन्दन पन्त भी ऐसी ही विशिष्टताओं के साथ हिन्दी साहित्य की ओर बढ़ रहे थे। तभी अत्यंत सामर्थ्यवान वाणी, पौरुष, गहरी दार्शनिकता और छन्द सम्बन्धी भारी पांडित्य लेकर श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी साहित्य में अवतरित हुए। उनके कण्ठ में चुनौती का स्वर था और प्राणों में विद्रोह की पुकार। धीरे-धीरे वे हिन्दी साहित्य के ही क्षेत्र में नहीं, बल्कि समूचे भारतवर्ष में इस तरह छा गए कि लोकप्रियता की दृष्टि से उन्होंने अपने अधिकांश सहयोगी साहित्यकारों को ही नहीं, बल्कि चार छः को छोड़कर, हिन्दी साहित्य के सभी कवियों को पीछे छोड़ दिया।

भीषण संघर्ष और अनगिनत मुश्किलों मुसीबतों के पश्चात् भी उनकी लेखनी आज चल रही है और इसमें सन्देह नहीं कि शिथिल हाथों

में दबी हुई उनकी मामूली लेखनी आज भी जो शक्ति रखती है उसके लिए हिन्दी की आने वाली पीढ़ियाँ उनके प्रति श्रद्धा से नत होंगी। उनके व्यक्तिगत सुख दुःख की दृष्टि से उनके ऊपर निरन्तर टूटने वाली आपत्तियाँ और बंगाल में उनका रहना आदि भले ही उनका दुर्भाग्य कहा जाय, किन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जो संघर्ष उन्होंने झेले हैं, उनके अभाव में निराला का अपना व्यक्तित्व ही समाप्त हो गया होता। संघर्षों ने उनको ही नहीं बल्कि उनके समूचे काव्य को एक गजब की दृढ़ता दी। उनकी रचनाओं का पाठक न टूटने और न झुकने के दार्शनिक रूझान से भर जाता है। स्वाभिमान का इतना बड़ा प्रचारक हिन्दी को कम देखने को मिला होगा। उनके काव्य की एक भी पंक्ति में स्त्रैणता की झलक नहीं मिलेगी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि छायावादी कवि के लिए स्त्रैणता से बचना कितनी बड़ी बात थी। व्यंग के लिए भले ही लोगों ने उस समय निराला को कार्टूनों में स्त्री-सुलभ स्वभाव से युक्त चित्रित किया हो, किन्तु यह सच है कि उनका समूचा काव्य पौरुष से भरपूर है। वैष्णवी हल्की भावुकता भी उनके काव्य में नहीं मिलेगी। उनके काव्य में वैदिक ओज और तेजस्विता है।

'अनामिका' 'निराला' का प्रथम प्रकाशित संग्रह है और उसमें 'नारायण', 'मतवाला' तथा 'समन्वय' में १६२३ ई० तक की प्रकाशित रचनाएँ संग्रहित हैं। अपने इस संग्रह पर महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे बुजर्ग साहित्यकार से उन्हें प्रोत्साहन मिला और वे आगे बढ़ चले। इस पहले संग्रह में ही निराला ने अपने भावी विकास की सूचना दी। इस संग्रह में निराला के बंगाली संस्कार और प्रभाव और रामकृष्ण मिशन के आदेश-उपदेश छूटे नहीं हैं और उनका दार्शनिक ऊहापोह अनेक स्थलों पर काव्य पर छा जाता है। 'पंचवटी-प्रसंग' में लम्बे दार्शनिक विश्लेषण मिल जाते हैं—

भक्ति योग कर्मज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ—

द्वैत भाव ही है भ्रम ।
तो भी प्रिये !
भ्रम के भीतर से भ्रम के पार जाना है ।
मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहिले ही ।
इसीलिए द्वैत भाव भावुकों में
भक्ति की भावना भरी ।

इस संग्रह में निराला की दो सर्वाधिक लोकप्रिय कविताएँ भी स्थान पा सकी हैं—'जुही की कली' और 'तुम और मैं'। इन कविताओं में दार्शनिक आग्रह है, किन्तु दर्शन यहाँ विचार ही न रह कर भावना का रूप ग्रहण कर उठा है। बहुत सम्भव है कि इन कविताओं पर बंगाल की कुछेक कविताओं का प्रभाव हो; किन्तु यह निर्विवाद है कि कहीं कुछ प्रभाव लेने पर भी वे सर्वथा मौलिक हैं। इन आरम्भिक कविताओं में ही निराला छन्दों के बन्धन को तोड़ देते हैं और 'पंचवटी-प्रसंग' का विशेष महत्व इसीलिए है कि उसमें कवि बहुत ही शक्ति के साथ लय का निर्वाह करता हुआ मुक्त छन्द को लेकर उपस्थित होता है। 'जुही की कली' और 'तुम और मैं' कविताओं को बाद में प्रकाशित होने वाले संग्रह परिमल' में भी स्थान दिया गया है। इन आरम्भिक कविताओं में नख-शिख चित्रण की कुछेक पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं। चित्रण का रीतिकालीन ढंग होने पर भी मुक्त छन्द में प्रस्तुत होने के कारण चित्रण अधिक सशक्त और सुन्दर लगता है—

फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल,
चिबुक चारु और हँसी बिजली सी,
योजनगंध पुष्प जैसा प्यारा यह मुखमण्डल,
फैलते पराग दिग्मण्डल आमोदित कर,
खिंच आते भौंरे प्यारे ।
देख यह कपोत कण्ठ—

बाहुबली कर सरोज—
उन्नत उरोज पीन—
'क्षीण कटि—
नितम्ब भार—चरण सुकुमार—
गति मन्द मन्द

'तुम और मैं' तथा 'जुही की कली' नामक श्रेष्ठतम कविताओं में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों को कविता में उतारा गया है। वहाँ दार्शनिकता अनुभूति बनकर केन्द्र में बैठी हुई है और उसके चारों ओर कविता का आवश्यक ताना-बाना है। इसीलिए उच्चकोटि की दार्शनिकता की दृष्टि से भी ये कविताएँ महान् हैं।

सन् १९२३ और १९३० के बीच में लिखी गई कुछेक कविताओं को निराला ने १९३८ में 'अनामिका' के ही नाम से प्रकाशित किया। यह दूसरी अनामिका है और इसे प्रथम 'अनामिका' तथा 'परिमल' (१९३०) के बीच की स्थिति का द्योतक माना जा सकता है। इस संग्रह में देशप्रेम की भी कुछ रचनाएँ हैं। 'खण्डहर के प्रति' कविता में कवि भारत को खण्डहर के रूप में देखता है। 'दिल्ली' नामक कविता में भी उनका देश-प्रेम झलकता है, पर भारत के अतीत का उनका स्मरण मूलतः शृंगारिक ही है। बंगाली प्रभाव इस समय तक भी निराला के ऊपर से पूरी तरह धुले नहीं हैं, पर उनकी मौलिकता ऐसे प्रभाव को बहुत ही अल्प अवकाश देती है। 'क्या गाऊँ' कविता पर रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जली' के गीत का प्रभाव मालूम पड़ता है, पर कविता की मौलिकता भी सुरक्षित है और यह कविता कवित्व की दृष्टि से पर्याप्त सुन्दर भी बन पड़ी है—

क्या गाऊँ ? माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग-रागिनियाँ,
गाती हैं किन्नरियाँ—कितनी परियाँ—
कितनी पंचदशी कामिनियाँ,
वहाँ एक लेकर वीणा दीन

तन्त्री क्षीण,—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?—

—माँ क्या गाऊँ ?

इस सग्रह में स्वय कविता के प्रति भी निराला ने कुछ कविताएँ लिखी हैं। वे कविता को अपनी प्रेयसि के रूप में देखते हैं—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्द्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह

कविता प्रेयसि पर लिखी गई इस प्रकार की पंक्तियों में वे अपनी छन्द सम्बन्धी मान्यताओं की घोषणा करते हैं।

'राम की शक्ति-पूजा' संग्रह की सम्भवतः सबसे अधिक प्राणवान कविता है। राम का अन्तरद्वन्द और आवेश देखने योग्य है। अन्तिम दिन जब दो प्रहर रात्रि शेष रह गई, तब दुर्गा प्रकट हुई और छिपकर राम की पूजा का कमल उठा ले गई। साधना के भंग होने के डर से राम की जो मनःस्थिति हुई वह निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है—

देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय,
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गए नयन द्वय;—
'धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !
जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका !,
वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य औ नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत् गति हत चेतन,
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।

'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
'कहती थी माता मुझे सदा राजीव नयन !,
दो नील कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर माता एक नयन !'

कह कर देखा तूणीर ब्रह्म शर रहा झलक,
ले लिया हस्त लप लप करता वह महाफलक,
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन,
ले अर्पित करने को उद्यत हो गए सुमन।

सबसे बड़ी बात यह है कि अनावश्यक वर्णनात्मकता, जो 'निराला' की बाद की रचनाओं में जैसे—'कुकुरमुत्ता' आदि—में मिल जाती है, वह ढूढ़ने पर भी इसमें नहीं मिलेगी। सारी की सारी कविता राम की आन्तरिक तिलमिलाहट पर केन्द्रित है। कविता का वीर रस समर्थ भाषा में और भी सबल अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त और सामासिकता से भरी हुई आरम्भ की भाषा युद्ध की कठोर भूमि का सा अनुभव कराती है, जिसका स्पर्श पाते ही बाँहें फड़क उठती हैं। राम की शक्ति-पूजा में जिस प्रकार की समर्थ भाषा प्रयुक्त हुई है वैसी भाषा और कहीं कम देखने को मिलेगी। प्रस्तुत कविता अपने आप में एक खण्ड-काव्य है और संसार की श्रेष्ठतम कविताओं में गर्व के साथ खड़ी रह सकती है।

एक देखने की बात है कि 'निराला' की इन आरम्भिक रचनाओं में कुछेक अपवादों को छोड़कर अधिकांशतः वह सामान्य जीवन से ली गई हैं। निराला की भाषा दिन पर दिन सरलता से कठिनता की ओर बढ़ती गई और अनेक स्थलों पर तो स्थिति यह आई कि अच्छे शब्दकोष वाला व्यक्ति भी उनकी भाषा ही न समझ सका।

अनामिका' में संग्रहित कविताओं के बाद की कविताएँ 'परिमल' में संग्रहित हैं। आलोचकों ने इस संग्रह में संग्रहित कविताओं को अनेक भागों

में विभक्त किया है—प्रकृति, प्रेम, देशप्रेम, नारी-सौन्दर्य, सामान्य मानव-भूमि, तथा दर्शन आदि।

हिन्दी काव्य-साहित्य में प्रकृति का आलम्बन रूप में सुन्दर चित्रण 'निराला' के पूर्व बहुत कम हुआ है। 'निराला' ने इस दिशा में विशेष साहस दिखाया और 'परिमल' में प्रभाती, यमुना के प्रति, वासंती, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, वसंत समीर, प्रथम प्रभात, सन्ध्या सुन्दरी, शरद् पूर्णिमा की विदाई, वन कुसुमों की शैया, रास्ते के फूल से, प्रपात के प्रति, बादल राग, शेफालिका आदि अनेक प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ देखने को मिलती हैं। इन कविताओं में कहीं कहीं रूपकों के माध्यम से आध्यात्मिकता को भी प्रश्रय दिया गया है, किन्तु प्रकृति का अपना स्वतन्त्र चिन्तन कहीं भी शिथिल नहीं होने पाया है। प्रकृति चित्रण में 'हरिऔध' की तरह स्थूल दृष्टि रखने और नाम गणना कराने के स्थान पर निराला ने प्रकृति सुन्दरी के दर्शन उसकी चरम सूक्ष्मता में किये हैं। ऐसे चित्रण आकर्षक और मोहक होते हुए भी अपनी कल्पना प्रधानता के कारण बहुत कुछ वायवी लगते हैं। प्रकृति चित्रण में मानवीय करण की प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित होती है। सन्ध्या का वर्णन जैसा कि उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, एक सुन्दरी के रूप में हुआ है—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे

× × ×

अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखि नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर पथ से चली।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि निराला के प्रकृति चित्रण के पीछे एक दार्शनिक उद्देश्य भी रहता है और वह मात्र प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण के ही विलास के लिए नहीं होता। इस प्रकार निराला की ऐसी रचनाएँ एक दृढ़ आधार भूमि पर स्थित तो अवश्य हो जाती हैं, किन्तु साथ ही साथ कहीं-कहीं उनमें कुछ उलझाव भी आ जाता है।

'परिमल' में मानव प्रेम सम्बन्धी कुछेक रचनाएँ हैं। ये रचनाएं मुख्यतः निराला ने अपनी परलोकगत पत्नि से सम्बन्धित कुछेक स्मृति-चित्रों के रूप में चित्रित की हैं। स्पष्ट की है कि निराला का प्रेम चित्रण स्वकीया के स्वस्थ, सहज और गम्भीर प्रेम का चित्रण है, परकीया के चपल और असामाजिक प्रेम का नहीं—

याद थी आई
एक दिन शान्त
वायु थी, आकाश
हो रहा था क्लान्त
ढल रहे थे मलिन मुख रवि, दुख किरण
पद्म मन पर थी, राह अवसन्न वन,
देखती यह छवि खड़ी मैं, साथ वे,
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले

'एक दिन होगा
जब न मैं हूँगा......।'

उपर्युक्त पंक्तियों में गृहस्थिक जीवन का बड़ा सहज चित्र उपस्थित किया गया है। इसमें जिस विषादपूर्ण आशंका की छाया है वह निराला के ही नहीं किसी भी अन्य गृहस्थ के मस्तिष्क के लिए स्वाभाविक है। फिर निराला का गृहस्थिक जीवन तो निरन्तर क्षोभ का विषय रहा है। यह सब कुछ होने पर भी मानवीय प्रेम के चित्रण में निराला अपने युग से प्रभावित हुए बिना न रह सके और सभी छायावादी कवियों की तरह उनका प्रेम चित्रण भी वास्तविक

समानता की ठोस भूमि पर न होकर बहुत कुछ भावनात्मक और कल्पना प्रधान समानता पर आधारित है। उन्होंने नारी स्वातन्त्र्य का नारा बुलन्द करके नारी को सामन्ती रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्ति तो दिलवाई, किन्तु यह मुक्ति वास्तविक न होकर भावनात्मक ही है। नारी को देवि, अप्सरा, कल्याणी जैसे विशेषणों से तो अवश्य लाद दिया गया, पर उसको विशुद्ध मानवी के रूप में—पुरुष की पूरिका के रूप में, कम ही देखा गया। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में उसे (नारी को) वास्तविक समानता का दिया जाना अभी भी शेष रहा आया।

'परिमल' में देश प्रेम सम्बन्धी कविताओं में 'जागो फिर एक बार' और 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' उल्लेखनीय हैं। भारतीयों के हीनत्व भावों को वे उखाड़ फेंककर उन्हें चरम विश्वास से भर देना चाहते हैं। 'जागो फिर एक बार' में वे वैदिक ऋषि की तरह कह उठते हैं—

'तुम हो महान्,
तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी। है नहीं,
पूरा यह विश्व भार।'—
जागो फिर एक बार।

अपनी इस कविता में वे ऐतिहासिक वीरों का पुनः स्मरण दिलाते हैं और देश की गौरव गाथा की ओर संकेत करते हैं। सन् १९२१ में देश असहयोग आन्दोलन में संलग्न था और उसी समय लिखी गई निराला की यह कविता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि छायावदी कवि अपने समय के प्रति और चारों ओर की परिस्थितियों के प्रति पूरी तरह ईमानदार था और निराला जैसे पौरुषपूर्ण कवि का स्वर तो निश्चय ही पलायनवादी न होकर परिस्थितियों के

प्रति पूरा साहस लेकर बढ़ने का ही रहा है। उनकी कविता पढ़ने के पश्चात इस सम्बन्ध में प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

'छत्रपति शिवाजी का पत्र' नामक दूसरी कविता में एक सीमित दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह सही है कि शिवाजी के समय में जातीयता ही राष्ट्रीयता थी और शिवाजी महाराज औरंगजेबी अत्याचार के विरुद्ध लड़े थे। उनको लेकर लिखी गई कविता सन् १९३२ की परिस्थितियों में कोई विशेष महत्व का कार्य सिद्ध नहीं कर सकती थी और फिर उनका पावन स्मरण जब उत्साह, साहस, महानता और शक्ति की वृद्धि के लिए नहीं हो तब तो उससे और अधिक आशा करना ही व्यर्थ है। कवित्व की दृष्टि से भी समूची कविता वर्णनात्मक है। संक्षिप्त आकार में लिखे गए इस खण्ड-काव्य में कुतूहल का भी अभाव है। कथा का कसाव किन्हीं विशेष मार्मिक प्रसंगों पर आधारित नहीं है; फिर भी भाषा की शक्ति, छन्द की मुक्तता आदि निराला की अपनी विशेषताएँ इस कविता में सुरक्षित हैं। छायावादी कवियों में निराला में ही सबसे अधिक सुदृढ़ राजनीतिक संकेत मिलते हैं।

'परिमल' की कुछ कविताएँ सामान्य मानव-भूमि को लेकर चलती हैं। 'भिक्षुक' और 'विधवा' कविताएँ ऐसी ही हैं। दोनों के ही चित्रण हिन्दी साहित्य में अनूठे हैं। 'विधवा' नामक कविता में तो भारतीय वैधव्य की जैसे समूची सात्विकता मूर्तिमान हो गई है। इस कार्य में उपमानों का सहयोग देखने योग्य है—

> वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी,
> वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन;

भारतीय वैधव्य के अन्य अनेक लक्षण भी उपमानों के सहारे स्पष्ट किए गए हैं—

> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
> वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन;

सन् १६३० में प्रकाशित 'परिमल' निराला जी का बहुत प्रौढ़ कविता-संग्रह था और उसके कारण जहाँ उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई वहाँ उनका विरोध भी कम न हुआ। 'परिमल' के छन्द, विषय, भाषा आदि को लेकर कटुतम आलोचनाएँ की गईं, किन्तु आज यह स्पष्ट है कि निराला के इस कविता-संग्रह का प्रकाशन जिस दिन हुआ, वह हिन्दी के लिए परम सौभाग्य का दिन था।

'परिमल' के पश्चात सन् १६३६ में 'गीतिका' प्रकाशित हुई। 'गीतिका' में संगीत तत्व की प्रधानता है। इस सग्रह के नामकरण का भी सम्भवतः यही कारण है। 'गीतिका' की 'समीक्षा' में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते है—'रहस्यवाद तो इस युग की प्रमुख चिन्ताधारा है। परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से उनके गीत अनुरंजित हैं। रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की बहुविधि चेष्टाएँ आधुनिक हिन्दी में की गई हैं। उनमें 'निराला' की कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ कवियों ने रहस्यपूर्ण कल्पनाएँ ही की हैं; किन्तु 'निराला' के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकाश पदों में मानवीय जीवन के चित्र हैं सही, किन्तु वे सबके सब रहस्यानुभूति से अतिरंजित हैं।' परन्तु 'गीतिका' के रहस्यवाद का आलोचकों ने अनेक पक्षों में रखकर देखा है। **जीव-ब्रह्मपरक रहस्यवाद**; जो—'पास ही रे हीरे की खान, खोजता कहाँ और नादान ?' तथा 'हुआ प्रातः प्रियतम तुम जाओगे चले, कैसी थी रात बन्धु थे गले गले।' जैसी अनेक पंक्तियों में व्यक्त हुआ है।

प्राकृतिक रहस्यवाद ; प्राकृतिक चित्रण के माध्यम से निराला ने अनेक स्थलों पर रहस्यात्मकता की झलक दिखाई है और थोड़े-बहुत रहस्य की ध्वनि तो उनकी इस प्रकार की प्रायः सभी कविताओं में मिल जाती है। कठोर साधना के पश्चात् वरदान प्राप्ति की ध्वनि को 'पतझर और बसन्त' के रूपक के माध्यम से निम्नलिखित कविता में बहुत मुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पतझर की सूखी डाल में पार्वती के तप का भी क्षीण आभास दिया गया है—

सूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी।
देख खड़ी करती तप अपलक,
हीरक सी समीर माला जप,
शैल सुता अपर्ण अशना,
पल्लव-वसना बनेगी—
वसन वासन्ती लेगी।

'गीतिका' में देश-भक्ति और देश के ऊपर भी रचनाएँ हैं और इन कविताओं के द्वारा निराला अपनी पिछली परम्पराओं को अक्षुण रखते हैं। देश-भक्ति सम्बन्धी इन कविताओं में कला का रूप पर्याप्त निखर आया है। भारती की वन्दना करता हुआ कवि जो कुछ गाता है, उसमें देश के राष्ट्रीय गीतों में स्थान बना लेने की पर्याप्त क्षमता है—

भारती जय-विजय करे!
कनक शस्य कमल धरे!
लका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल,
धोता शुचि चरण युगल,
स्तव कर बहु-अर्थ भरे।

प्रेम और नारी सौन्दर्य के सम्बन्ध में भी कुछेक रचनाएँ 'गीतिका' में संग्रहित हैं, किन्तु नारी सौन्दर्य और प्रेम के चित्रण में कवि अपनी पिछली रचनाओं की भाँति ही छायावादी प्रवृत्तियों से अधिक ऊपर नहीं उठ पाया है। कल्पना के कानन की रानी से छायावादी नारी की कल्पना मूर्ति स्पष्ट हो जाती है। उसमें ठोस कुछ नहीं दिखाई देता। प्रेम के सम्बन्ध में कुछेक गीत कल्पना के आकाश से नीचे उतर कर विशुद्ध मानव-भूमि पर लिखे गए हैं—

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली।
जागी रात सेज प्रिय पति सग रति सनेह रग घोली,

× × ×

उठी सम्भाल बाल, मुखलट,पट,दीप बुझा, हँस बोली,
रही यह एक ठिठोली।

होली का चित्रण प्रस्तुत करने वाले इस गीत में उतनी ही स्वस्थता है, जितनी हाल की 'गाहा सप्तसई' के दाम्पत्य प्रेम के चित्रण में।

'गीतिका' में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, संगीत-तत्व की प्रधानता है और संगीत-तत्व की प्रधानता के कारण निराला की ये कविताएं सही मायनों में प्रगीति मुक्तक हैं। निराला ने 'गीतिका' की भूमिका के अन्तिम अंश में अपनी इन कविताओं के संगीत तत्व को कुछ विस्तार से समझाया भी है। अपने संगीत-तत्व के कारण 'गीतिका' की कविताएँ हिन्दी साहित्य के मध्ययुग के पूर्वार्द्धकाल की रचनाओं के निकट हैं। हिन्दी साहित्य में ही नहीं बल्कि संसार के सभी साहित्यों में गीतिकाव्य का संगीत तत्व क्रमशः कम होता गया है और आन्तरिक संगीतात्मकता के प्रति ही रूझान बढ़ता गया है। कहना होगा कि 'गीतिका' में गीतिकाव्य के संगीत तत्व का पुनर्जागरण हुआ है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि यह कहाँ तक उचित है। हमें इस प्रश्न से कोई विशेष तात्पर्य भी नहीं, लेकिन फिर भी इतना सच है कि संगीत तत्व की प्रधानता के कारण 'गीतिका' के गीतों में जो कसाव, संक्षिप्ती और भाषा की सामासिकता तथा अर्थगर्भी संस्कृत तत्सम शब्दों का प्राधान्य हुआ है, उसके कारण वे (गीत) साधारण जनता की ही नहीं बल्कि समझदार पाठक की समझ से भी कुछ दूर जा पड़े हैं। सम्भवतः यही कारण है कि 'गीतिका' के अन्त में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा लिखित सरलार्थ दिया गया है।

दूसरी 'अनामिका' की कुछेक कविताएँ काल-क्रम की दृष्टि से 'परिमल' और 'गीतिका' के पश्चात् की रचनाएँ हैं। ऐसी कुछ रचनाओं पर हमने पहले ही विचार कर लिया है। यहाँ 'सरोज-स्मृति' पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। 'सरोज-स्मृति' निराला की एकमात्र कन्या सरोज के देहावसान पर लिखी गई है। दिवंगता पुत्री को निराला सम्बोधित करते हैं और पुत्री से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का स्मरण करते हुए आगे बढ़ते हैं। ये घटनाएँ, जैसा

कि स्वाभाविक है, स्वयं निराला के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालती हैं और इस प्रकार 'सरोज-स्मृति' एक आत्मपरक कविता है। गीतिकाव्य के विभिन्न भेदों में उसे शोक गीति में स्थान दिया जायेगा। कविता में निराला के जीवन पर निरन्तर पड़ने वाले आघातों की ओर संकेत है और फलस्वरूप समूची कविता गहरी मार्मिकता से ओत-प्रोत है। नारी के सौन्दर्य का तटस्थ वर्णन करना बहुत कम कवियों से सम्भव हुआ है और वह वर्णन तो कवि की समस्त काव्य साधना, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों की सबसे बड़ी परीक्षा है जबकि जिस नारी का वर्णन किया जा रहा है वह स्वयं कवि की अपनी पुत्री है। इसमें सन्देह नहीं कि निराला को इस क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ उदाहरणस्वरूप 'सरोज-स्मृति' का एक लम्बा अंश उद्धृत किया जा रहा है—

देखती मुझे तू हँसी मन्द,
होठों में बिजली फँसी स्पन्द
उर में भर झूली छबि सुन्दर,
प्रिय की अशब्द शृङ्गार - मुखर
तू खुली एक - उच्छ्वास-सङ्ग,
विश्वास स्तब्ध बँधे अङ्ग-अङ्ग,
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।
देखा मैंने वह मूर्ति-धीती
मेरे वसन्त की प्रथम गीति—
शृङ्गार, रहा जो निराकार,
रस कविता में उच्छ्वसित - धार
गाया स्वर्गीया - प्रिया - सङ्ग—
भरता प्राणों में राग रङ्ग,
रति रूप प्राप्त कर रहा वही,
आकाश बदल कर बना मही।

दूसरी 'अनामिका' की कविताओं में रूढ़ियों और अन्यायों के प्रति व्यंग करने की शक्ति निराला में प्रखर हो चलती है। 'सरोज-स्मृति' में भी सारी मार्मिकता के भीतर से एक व्यंग की ध्वनि सुनाई देती है। दूसरी 'अनामिका' की और कविताएँ—किसान की नई बहू की आँखें, खुला आसमान, ठंड, तोड़ती पत्थर और सहज आदि महत्वपूर्ण है। इन कविताओं में निराला प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर होते हैं। इन कविताओं में व्यक्त उनकी प्रगतिशीलता सुमित्रानन्दन पन्त की तरह बौद्धिक न होकर कवि के अन्तरतम से सम्बन्धित है।

'तोड़ती पत्थर' नये रूझान को लेकर चलने वाली निराला की कविताओं में सबसे सुन्दर और लोकप्रिय कविता है—

> वह तोड़ती पत्थर;
> देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
> वह तोड़ती पत्थर।
>
> कोई न छायादार
> पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
> श्याम तन, भर बँधा यौवन,
> नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
> गुरू हथौड़ा हाथ,
> करती बार-बार प्रहार,
> सामने तरूमालिका अट्टालिका प्राकार।

इन कविताओं को पढ़ने से यह स्पष्ट होगा कि पुराने छायावादी संस्कार अभी भी पूरी तरह छूटे नहीं हैं। 'श्याम तन, भर बँधा यौवन' जैसी पंक्तियों में पुराना रोमांस उभर आता है, लेकिन इतना निश्चित है कि इन कविताओं में निराला एक निश्चित नई दिशा की ओर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं और ये कविताएँ उनकी आगे आने वाली नई कविताओं का स्पष्ट आभास देती हैं।

दूसरी 'अनामिका' में जो गीत आए हैं उनमें नवीनता का अभाव है और भावना की दृष्टि से वे 'गीतिका' के निकट के ही गीत हैं।

'तुलसीदास' सन् १९३८ में प्रकाशित सौ छन्दों का एक छोटा-सा खण्ड-काव्य है। कथा का आधार तुलसी के सम्बन्ध में प्रचिलित जनश्रुति है। तुलसी के जीवन की इस प्रचिलित जनश्रुति से सम्बन्धित घटना पर ही प्रकाश डाला गया है। इस खण्ड-काव्य में चरम मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। आरम्भ में मुगलों के आक्रमण का वर्णन और हिन्दू शासन तथा संस्कृति के ह्रास का वर्णन किया गया है। तुलसीदास चित्रकूट घूमने जाते हैं और वहाँ प्रकृति से प्रबोध ग्रहण करते हैं। उनका मन हिन्दू सभ्यता के लिए कुछ करने के लिए आतुर हो उठता है, किन्तु तभी उन्हें अपनी पत्नि का ध्यान आता है और वे तभी मोहान्धकार मे डूब जाते है। कुछ दिनों पश्चात् उनकी पत्नि रत्नावली का भाई रत्नावली को लिवाने आता है और तुलसीदास की अनुपस्थिति में लिवा ले जाता है। पत्नि को घर पर न देखकर तुलसीदास का मोहान्धकार उनको ससुराल ले जाता है। वहाँ—

धिक् आए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत,
राम के नहीं काम के सूत कहलाए!

हो बिके जहाँ तुम बिना दाम
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए!

उपर्युक्त पंक्तियो को पत्नि से सुनकर तुलसीदास के मन में विराग उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार समूची कथा मनोविज्ञान की नींव पर आधारित है और निराला ने अपने चित्रण में कथा के मनोविज्ञान के साथ पूरा-पूरा न्याय किया है। तुलसीदास के कुछेक चित्रण बड़े घरेलू और सहज स्वाभाविक बन पड़े हैं। भाई और बहिन का वार्त्तालाप स्वाभाविकता से ओत-प्रोत है। भाई कहता है—

'हो गई रतन कितनी दुर्बल,
चिन्ता में बहिन रही तू गल!

माँ, बापू जी, भाभियाँ सकल पड़ोस की !
हैं विकल देखने को सत्वर,
सहेलियाँ सब ताने देकर,
कहती हैं, बेचा वर के कर, आ न सकी !
'तुझसे पीछे भेजी जाकर
आईं वे कई बार नैहर,
पर तुझे भेजते क्यों श्रीवर जी डरते ?'

तुलसी की इस कथा को जिस भाषा में गूँथा गया है वह देश और काल के सर्वथा अनुरूप है। छायावादी प्रबन्ध काव्यों में 'तुलसीदास' का एक विशिष्ट स्थान है। उसकी कथा का गठन इतना दृढ़ है कि एक भी अनावश्यक या अतिरिक्त शब्द उसमें स्थान नहीं बना पाता। वर्णन की प्रचुरता और फलस्वरूप शिथिलता, जो थोड़ी-बहुत मात्रा में 'कामायनी' में भी मिल जाती है, 'तुलसीदास' में नहीं। खण्ड-काव्य होने के कारण 'तुलसीदास' में इसके लिए स्थान भी तो नहीं था। सभी दृष्टियों से 'तुलसीदास' न केवल निराला की ही श्रेष्ठ रचनाओं में स्थान पाने योग्य है, अपितु समूचे हिन्दी साहित्य में इसका स्मरण बड़े गौरव के साथ होगा।

सन् १९३९ ई० के लगभग निराला अपने काव्य में एक बिल्कुल नया मोड़ लेना आरम्भ करते हैं। उनकी इस नए मोड़ की कविताएँ प्रयाग से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'उच्छृङ्खल' में प्रकाशित होनी आरम्भ हुईं। निराला के पिछले समूचे काव्य का जिसने सावधानी से अध्ययन किया है उसके लिए निराला में इस नए मोड़ की कल्पना करना भी कठिन है। विषयवस्तु में ही नहीं बल्कि भाषा में भी वे शास्त्रीयता से एकदम सर्व-सामान्य की ओर आ जाते हैं। इन नये प्रकार की कविताओं में निराला में व्यंग की जबरदस्त शक्ति दिखाई देती है। इतना पैना व्यंग कबीर के पश्चात् हिन्दी ने किसी भी कवि में नहीं देखा था। आरम्भ की अनेक कविताओं में जिस कविता ने लोगों का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया वह 'कुकुरमुत्ता' है। आलोचकों ने जो स्थान निराला की छायावादी

कविता में 'जुही की कली' को दिया है वही स्थान 'कुकुरमुत्ता' को नयी कविताओं में देने की सिफारिश की है। 'कुकुरमुत्ता' के व्यंग के सम्बन्ध में आलोचकों में बड़ा मतभेद भी रहा है। कवि का व्यंग अभिजात वर्ग और नौकरशाहों की संस्कृति के प्रति है। इसका आयात किया गया है और जो किसी भी तरह से देश की मिट्टी की सहज उपज नहीं है। देश की सहज संस्कृति का प्रतीक 'कुकुरमुत्ता' है। यह संस्कृति जन-जन में व्याप्त है और यह अपने आप उत्पन्न होती है। अभिजात वर्ग की संस्कृति के गुलाब की तरह इसकी कलम नहीं लगती, लेकिन इस व्यंग के अतिरिक्त 'कुकुरमुत्ता' में निराला अन्य अनेक बातों पर भी व्यंग करते हैं और इन अनेक बातों पर किया गया व्यंग ही, जो स्थान-स्थान पर आ गया है, 'कुकुरमुत्ता' में निहित व्यंग के सम्बन्ध में आलोचकों के मतभेद का कारण है। 'कुकुरमुत्ता' के कथन में अनेक व्यंग गुंथे हुए हैं—

'कैपिटलिस्ट के प्रति व्यंग—

> खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
> डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट;
> कितनों को तूने बनाया है ग़ुलाम,
> माली कर रक्खा खिलाया जाड़ा-घाम

आधुनिक अंग्रेजी काव्य पर व्यंग—

> कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर
> टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,
> पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर कहा,
> 'कैसे लिखा संसार सारा।'

कुछ और व्यंग भी देखे जा सकते हैं—

> आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर
> उसके पीछे बहार, जैसे भुक्खड़ फालोवॅर,
> उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर—
> आधुनिक पोयट।

'कुकुरमुत्ता' की लम्बी वर्णनात्मकता अखर जाती है और इस लम्बे वर्णन के कारण व्यंग का असर भी कुछ कम हो जाता है, किन्तु फिर भी यह मानना होगा कि निराला का व्यंग बहुत सतेज है।

'कुकुरमुत्ता' की भाषा एक मिश्रित भाषा है। उसमें हिन्दी, उर्दू-फारसी और अँग्रेजी के शब्द बड़ी उदारता से प्रयुक्त हुए हैं और फलस्वरूप वह अपनी विषयवस्तु को स्पष्ट करने में अधिक समर्थ है; किन्तु कुछेक स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है कि निराला के मन में ऐसी भाषा लिखते समय अपने पिछले काव्य की भाषा पर की गई आलोचनाओं की अनजान प्रतिक्रिया अवश्य काम कर रही थी।

'कुकुरमुत्ता' के पश्चात् सन् १९४३ में 'अणिमा' प्रकाशित हुई। निराला जैसे कवि का अपने संस्कारों से दूर जाना कुछ असम्भव सा था। 'अणिमा' इस बात की प्रमाण है। उसमे अधिकांश रचनाएँ निराला के पिछले काव्य की परिपाटी पर ही की गई हैं। 'अणिमा' में गीत, प्रसिद्ध व्यक्तियों पर लिखी गई कविताएँ, कुछ लम्बी कविताएँ और कुछ नये प्रकार की कविताएँ हैं। भाषा को छोड़कर गीत 'गीतिका' की परम्परा से ही सम्बन्धित हैं। 'गीतिका' की संस्कृतबहुल भाषा के स्थान पर 'अणिमा' के गीतों की भाषा बड़ी सरल और अकृत्रिम है—

बादल छाये;
ये मेरे अपने सपने
आँखों से निकले, मडलाये
बूँदे जितनी
चुनी अधखिली कलियाँ उतनी;
बूँदों की लड़ियों के इतने
हार तुम्हें मैंने पहराये
गरजे सावन के घन घिर-घिर,
नाचे मोर वनों में फिर फिर

जितनी बार
चढ़े मेरे भी तार
छन्द से तरह तरह तिर,
तुम्हें सुनाने को मैंने भी
नहीं कहीं कम गाने गाये;

प्रसिद्ध व्यक्तियों पर लिखी गई कविताओं में संतकवि रविदास जी के प्रति, (आचार्य शुक्ल जी के प्रति) श्रद्धाञ्जलि, आदरणीय प्रसाद जी के प्रति, भगवान् बुद्ध के प्रति, माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी के प्रति, युगप्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति आदि कविताएँ संकलित हैं। अपने समसामयिक साहित्यकारों के प्रति लिखी गई कविताएँ निराला के निरभिमान, ईमानदारी और आदर भाव की द्योतक हैं। उन्हें कुछ इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए जिस दृष्टि से अँग्रेजी के रोमान्टिक कवियों की इस प्रकार की कविताओं को देखा जाता है। रविदास के प्रति लिखी गई कविता में उनके विद्रोह की ध्वनि भी सुनाई देती है। पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' चर्मकार रविदास के चरणों में प्रणाम अर्पित करते हैं—

छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे
ज्ञानगङ्गा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार!

लम्बी कविताओं में सहस्राब्दी, उद्बोधन और स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज शीर्षक तीन कविताएँ हैं।

'अणिमा' का सम्बन्ध जहाँ एक ओर पुराने से है, वहाँ नये के प्रति रूझान भी उसमें स्पष्ट है। 'अणिमा' की इन नई कविताओं का चित्रण यथार्थ के अधिक निकट है और न केवल भावना में ही बल्कि छन्द और भाषा में भी किसी प्रकार का उलझाव न होकर एक व्यापक स्पष्टता है—

मेरे घर के पश्चिम ओर रहती है
बड़ी-बड़ी आँखों वाली वह युवती,

सारी कथा खुल-खुल कर कहती है,
चितवन उसकी और चाल-ढाल उसकी।
पैदा हुई है गरीब के घर, पर
कोई जैसे जेवरों से सजता हो,
उभरते जोबन की भीड़ खाता हुआ
राग साज पर जैसे बजता हो।

सन् १६४६ में निराला का एक नया संग्रह 'बेला' प्रकाशित हुआ। इसमें उनके कुछ गीत और ग़ज़ल हैं। गीत कुछ पुरानी परम्परा के हैं और कुछ नयी परम्परा के भी। पुराने गीत 'गीतिका' की परम्परा के होने पर भी अस्पष्ट हैं। उनका अर्थ समझना कठिन ही नहीं, बल्कि अधिकांश स्थलों पर असम्भव ही है। कहीं-कहीं तो समूची कविता एक निरर्थक प्रलाप की तरह प्रतीत होती है। आदि से अन्त तक एक भाव नहीं रह पाता। शास्त्रीय शब्दों में कहें तो उनमें भाव-संकलन का अभाव है। एक पंक्ति का सम्बन्ध दूसरी से बैठाना कठिन है, लेकिन इस सबके बावजूद भी कवि कहीं-कहीं अच्छी रचनाएँ भी प्रस्तुत कर सका है—

प्रतिजन को करो सफल।
जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से भरो सकल।
नहीं राजसिक तन मन,
करो मुक्ति के बन्धन,
नन्दन के कुसुम नयन,
खोले मृदु गंध विमल।

नये गीत सरल भाषा में लिखे गए हैं, परन्तु सभी स्थलों पर निराला सफल नहीं हो सके। इतनी बात अवश्य है कि उन्होंने अपने हृदय को जन-जन तक उतारा है और उनकी सहानुभूति पर बुद्धि का नहीं, हृदय का सहज शासन है।

इन कविताओं में भी कहीं कहीं व्यंग के दर्शन होते हैं और यह व्यग बहुत स्वस्थ भी है।

ग़ज़लों में कोई नवीनता नहीं है। उनमें विदेशी उपमानों और विदेशी भावनाओं के कारण हिन्दी का अपनापन सुरक्षित नहीं रह सका है, लेकिन कुछ ग़ज़लों की भावनाएँ बड़ा तीखी बनी पड़ी हैं—

ज़माने की रफ्तार में कैसा तूफ़ाँ
मरे जा रहे हैं, जिये जा रहे हैं।
खुला भेद, विजयी कहाये हुये जो
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।

सन् १६४६ में 'नये पत्ते' प्रकाशित हुआ। इसमें १६३६ और १६४६ तक की 'निराला' की अनेक प्रगतिवादी कविताएँ हैं और इस प्रकार काल-क्रम से इसका स्थान 'बेला' के पहिले आना चाहिए। 'नये पत्ते' में निराला का व्यग अपने चरम विकास तक पहुँचा है। प्रस्तावना मे कहा गया है कि 'सभी तरह के आधुनिक पद्य हैं। छन्द कई, मात्रिक, सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचाल वाली।' 'नये पत्ते' की कुछेक कविताएँ पुरानी परम्परा से सम्बन्धित हैं। कुछ अनुवाद भी सम्मिलित हैं, किन्तु जो कविताएँ महत्वपूर्ण हैं, वे नयी कविताएँ ही हैं। 'कैलाश में शरद्' और 'स्फटिक शिला' नामक कविताओ को विद्वानों ने एक अलग कोटि प्रदान की है। 'स्फटिक शिला' में मन की काम-वासनाओं पर आत्म-संयम और नैतिक-नियन्त्रण की विजय दिखाई गई है। सारे धार्मिक और पौराणिक संस्कार जैसे कवि के उछृङ्खल मन पर एकदम छा जाते हैं। 'स्फटिक शिला' में सौन्दर्य चित्रण भी बहुत सूक्ष्म और सरल भाषा में हुआ है—

खड़ा हुआ स्फटिक शिला मैं देखता ही रहा।
आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्प तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,